सावित्री

(नारी के आत्म-बल तथा साहस का [illegible])

लेखक
पारवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'


नवरत्न प्रकाशन

प्रकाशकीय

नवरत्न प्रकाशक का आधार एक दिन अचानक ही राजस्थान के यशस्वी साहित्यकार श्री यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' के कथन पर बन गया। श्री चन्द्र ने हिन्दी में बहु साहित्य का सृजन करके राजस्थान का नाम बढ़ाया है और उनकी समग्र गुजराती मराठी सिन्धी तथा उर्दू में अनुवादित प्रकाशित कृतियों ने राष्ट्रभाषा का मस्तक गौरवान्वित किया है।

हमारी ओर से उनकी अधिक से अधिक पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना रहेगी और अन्य प्रकाशकों से इनकी पुस्तकें भी आप सभी ये सहजता से प्राप्त कर सकेंगे। इस प्रकाशन के अवसर पर हम चन्द्र जी के बीकानेर वासी आत्मीयजनों एवं चित्रकार भाटी (दिल्ली) शांति (बीकानेर) के भी आभारी हैं। शांति जी ने आवरणों के अनुसार रंगे और भाटी जी ने उनमें विभिन्न इफैक्ट देकर रंग भरे।

एक बार मैं अपने व्यक्तिगत रूप से उन तमाम राजस्थान वासी तथा प्रवासी लोगों को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने चन्द्र जी की पुस्तकें अधिक खरीदकर मुझे बल दिया।

शान्तिश्री भट्टाचार्य
प्रकाशिका

हमारे द्वारा प्रकाशित चन्द्र जी की अन्य कृतियाँ

- एक इन्सान की मौत
  एक इन्सान का जन्म (कहानियाँ)
- एक कमरे की कहानी (उपन्यास)

मैं इतना ही कहूंगा

सावित्री मेरा नवीन उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा राजस्थान के सभी लोगों की कथा है। मैंने एक गाँव को लेकर वहाँ के बदलते युग को चित्रित किया है। यह चित्रण पात्रों के माध्यम से पाठकों अवश्य ही एक रोचक कथा का आनन्द देगा।

सावित्री इस उपन्यास की नायिका है। उसका पति उससे चार वर्ष छोटा है फिर भी वह स्वस्थ परम्पराओं व आदर्श को लेकर जीवित रहती है। क्योंकि धर्म उसके लिए सर्वोपरि है। अंधविश्वास कहाँ तक घातक सिद्ध हो सकते हैं यह भी मैंने बताने का प्रयास किया है।

उपन्यास में प्रयोग शब्द मुहावरे और वाक्य विन्यास राजस्थानी होने के हुए हैं वे इसलिए हुए हैं क्योंकि पात्रों की प्रकृति ने मुझे विवश सा कर दिया अतः आलोचक पाठक यह इस ध्यान में रखें।

इस उपन्यास के प्रकाशन पर मैं सरस्वती प्रकाशन के सभी सहयोगियों का आभारी हूँ जिन्होंने मेरे विचारों को मूर्त रूप दिया।

पाठक अपनी सम्मति भेजेंगे।

नाई की होली
बीकानेर

[illegible] शर्मा

अगर तुम्हारा स्तर वही है जो जीवन का है, अगर तुम्हारी कल्पना ऐसे नमूनों की रचना नहीं कर सकती जो जीवन में मौजूद न रहते हुए भी उन्हें सुधारने के लिए आवश्यक हैं तब तुम्हारा हुनर किस मर्ज की दवा है और तुम्हारे धंधे की क्या सार्थकता है ?

—गोर्की

(एक पाठक से)

यह गाँव है मेरा ।

प्यारा और अच्छा ।

यहाँ विशेष रूप से राजपूत और जाट रहते हैं । कुछ वैश्य कुछ ब्राह्मण, कुछ मुसलमान और शेष दो-दो चार-चार घर हैं—दूसरी पिछड़ी जाति और कामगरों के । एक करोड़पति सेठ है जो कलकत्ता रहता है ।

समय तेजी से बदल रहा है ।

समय के साथ यहाँ की प्रकृति भी । पहले वाला भाई-चारा स्नेह प्रेम आनन्द अनुराग और बन्धन सब टूट रहे हैं जिनकी कहानियाँ हमारे बड़े-बूढ़े आज भी सुनाते हैं । लोग सावन-भादों की रिमझिम में तेजा[1] का ओजस्वी गीत नहीं गाते । हरियाली भरे खेतों में अलगोजा की मदमाती धुन नहीं देते । स्त्रियाँ अपने कोमल से कंठों से 'मूमल'[2] की वेदना टिटिम्म में नहीं गुंजाती और वे 'ओल्यू'[3] का दर्द जन-मानस में नहीं भरती । नयी पीढ़ी पर सिनेमा की धुनें प्रभावित हो गयी हैं । बैलगाड़ी व ऊँटों की लम्बी यात्रा को कन्धे कारों की घरघराहट ले रही है । बैलों रहटों की जगह कुछ घरों में ट्यूबवैलों की अप्रिय घरघराहट भेजी जा रही है । लगता है धरती का पीयूष और प्यार भरा हर-मनोहर सूखता चला जा रहा है । नैसर्गिक जीवन कृत्रिम युग में बदरंगा हो रहा है । मान्यता मर्यादाएँ रीति-रिवाज और सामाजिक मूल्य सभी बदल रहे हैं ।

मैं एक युवक डाक्टर हूँ ।

---

१ एक लोक नायक २ एक लोक गाथा ३ लोक गीत

मेरा एक छोटा-सा परिवार है। पर भरा-पूरा और सम्पन्न है। धन बल भी सभी कुछ है।

किन्तु !

किन्तु मैं भीतर से बहुत दुःखी हूँ। मेरा मन दुःख के अतलान्त सागर में भारी लोहे के टुकड़े-सा डूबा हुआ है और न मिटने वाली विपुल-विषाद की परछाइयाँ मेरे मन-गगन को हर घड़ी घेरे रहती हैं। जीवन के कुछ ऐसे अनचाहे पृष्ठ हर घड़ी 'कीकर' और 'बोलिया' के वृक्ष के नीचे–नुकीली के बराबर काँटों की तरह भयंकर दंशन पीड़ा करते रहते हैं और तब इच्छा होती है कि सब कुछ कह दूँ। सब कुछ बता दूँ। अन्तराल में एक घुटन सी उत्पन्न होती है।

आज मन बहुत घुट रहा है। इस तरह घुट और ऊब रहा है कि कुछ कहे ही होगी। कहूँ ? हाँ कहूँ अपने अन्तरमें दबी घटनाओं-दुर्घटनाओं की कहूँ।

रात अभी पूरे यौवन पर है।

चाँदनी में सारा शहर डूबा हुआ है।

दूर ऊँचे हुए रेत के टीलों पर उगे झाड़ झंखाड़ काले-काले भूतों से लग रहे हैं। कहीं-कहीं श्वान नीरवता को रात का चमक भंग कर देता है। मेरा मन भारी है। अतीत बार-बार हृदय में तूफान उठाये हुए है। तूफान ! पीड़ा का तूफान ! कुछ उफान और अनेक व्यथाएँ और घटनाएँ कसमसाने लगती हैं ! झकझोर रही है मुझे।

सोचता हूँ लिखत को लिख दूँ। मन सचमुच हल्का हो जायेगा। सही हो या गलत एक दायित्व पूरा हो जायेगा।

लीजिये मैं तैयार हूँ।

'पेन' ने लिया है। वह चल पड़ा है—कागज पर। कहानी प्रारंभ करता हूँ—

"भरतए ओ भरतए !" माँ ने मुझे पुकारा। मैं जाता जाता रुक गया। मेरा नाम भरतए है जी भरतए। भरत का अपभ्रंश य कर घर

कहा। मैंने घूम कर जवाब दिया "क्या है माँ ?"

माँ जरा घूँघट सँभालती हुई मेरे पास आयी और थोड़ा-सा मुस्करा कर बोली "तेरा इसी महीने मुकलावा (गौना) होगा।"

मैं चुप हो गया। लाज से मेरी कनपटियाँ लाल हो गयीं। दृष्टि सामने दीवार के एक भाग को निरुद्देश्य एकटक देखने लगी।

"मैंने जो कहा वह सुना।" माँ के शब्दों में वज़न था।

मैं चुप।

"क्या गूँगा हो गया है ?"

मैंने जरा नाराज होते हुए कहा "क्या कहती हो माँ ? मुझे कुछ नहीं मालूम।

माँ के होंठों पर पवित्र निश्छल मुस्कान नाच उठी। मेरी नज़रें अब भी झुकी हुई थीं। माँ के ममतामय मुख पर एक अलौकिक ओज प्रतीत हुआ। उसकी आँखों में जीवन की गहरी अनुभूतियों की एक तड़प थी। उसमें एक तुष्टपूर्ण वात्सल्य था। वह बहुत खूबसूरत थी और वह हर घड़ी सिर पर ओढ़नी ओढ़े रखती थी। कानों में बड़े-बड़े झाले नाक में काँटा और पाँवों में बहुत ही भारी चाँदी की कड़ियाँ थीं जिनके एक एक का वज़न पूरा एक-एक सेर था।

माँ ने झुकते हुए ओढ़ने ओढ़ने पर दृष्टि जमाकर इस तरह कहना शुरू किया जैसे वह अपने आप से कह रही हो, "अब तू १८ वर्ष का हो गया है। जैसे तिया तेरह और मर्द अठारह। तब लड़का माँ-बाप को सलाह-मशविरा देने के काबिल बन जाता है किन्तु आँखों में बेटा सदा बेटा ही रहता है। वह काम धंधे के मामले में किसी भी काम से बाहर का नहीं बन सकता। अभी तो तेरे बापू ने कभी यह ध्यान नहीं दिया कि बेटा बेटा अब जोरावर (जवान) हो गया है। यह तो तेरे नाना (नानी) ने इतना बतला दिया कि तेरे बापू की आँखें खुल गयीं वर्ना वे तो चार बरस तक तुझे और नन्हा-मुन्ना ही समझे रहते। और तू इतने बड़ा पड़ा है।"

मेरा एक छोटा-सा परिवार है। घर भरा-पूरा और सम्पन्न है। धन धन भी सभी कुछ है।

किन्तु !

किन्तु मैं भीतर से बहुत दुखी हूँ। मेरा मन दुख के अतलान्त सागर में भारी लोहे के टुकड़े-सा डूबा हुआ है और न मिटने वाली विपुल-विषाद की परछाइयाँ मेरे मन-गगन को हर घड़ी घेरे रहती हैं। जीवन के कुछ ऐसे अप्रकाश पृष्ठ हर घड़ी 'कीकर' और 'बौंमिया' के वृक्ष के तीखे—उंगली के बराबर काँटों की तरह भयंकर दंशन पीड़ा करते रहते हैं और तब इच्छा होती है कि सब कुछ कह दूँ। सब कुछ बता दूँ। अन्तराल में एक घुटन सी महसूस होती है।

आज मन बहुत घुट रहा है। इस तरह घुट और ऊब रहा है कि कुछ कहे ही होगी। कहे ? हाँ कहे अपने अन्तस्में दबी घटनाओं-दुर्घटनाओं को कहे।

रात अभी पूरे यौवन पर है।

चाँदनी में सारा शहर डूबा हुआ है।

दूर फैले हुए रेत के टीलों पर उगे झाड़-झंखाड़ काले-काले धब्बों से लग रहे हैं। कहीं-कहीं इस नीरवता को रात का पखेरू भंग कर देता है। मेरा मन भारी है। अतीत बार-बार हृदय में तूफान उठाये हुए है। तूफान ! पीड़ा का तूफान ! घुटन तड़पन और अनेक कुंठाएं और घट नाएँ धमधमाने लगती हैं ! झकझोर रही हैं मुझे।

सोचता हूँ लिख डालूँ लिख दूँ। मन सचमुच हलका हो जायेगा। सही हो या गलत एक दायित्व पूरा हो जायेगा।

लीजिये मैं तैयार हूँ।

'पैन' ले लिया है। वह चल पड़ा है—कागज पर। कहानी प्रारंभ करता हूँ—

"सरवण ओ सरवण !" माँ ने मुझे पुकारा। मैं खाता खाता रुक गया। मेरा नाम सरवण है यानी सरवण। श्रवण का अपभ्रंश रूप सर

गए। मैंने घूम कर जवाब दिया "क्या है माँ ?"

माँ जरा घूंघट संभालती हुई मेरे पास आयी और थोड़ा-सा मुस्करा कर बोली, "तेरा इसी महीने मुकलावा (गौना) होगा।"

मैं चुप हो गया। लाज से मेरी कनपटियाँ लाल हो गयीं। दृष्टि सामने दीवार के एक भाग को निरुद्देश्य एकटक देखने लगी।

"मैंने जो कहा वह सुना।" माँ के शब्दों में वजन था।

मैं चुप।

"क्या गूंगा हो गया है ?"

मैंने जरा नाराज होते हुए कहा "क्या कहती हो माँ ? मुझे कुछ नहीं मालूम।"

माँ के होठों पर पवित्र निश्छल मुस्कान नाच उठी। मेरी नजरें अब भी झुकी हुई थी। माँ के ममतीले मुख पर एक अलौकिक ओज प्रदीप्त हुआ। उसकी आँखों में जीवन की गहरी अनुभूतियों की एक लहर थी। उसमें एक गुम्फित मार्गदर्शन था। वह बहुत तन्दुरुस्त थी और वह हर घड़ी सिर पर बोरिया बांधे रहती थी। कानों में बड़े-बड़े बालें नाक में कांटा और पांवों में बहुत ही भारी चांदी की कड़ियाँ थी जिसके एक एक का वजन पहा एक-एक सेर था।

माँ ने मुसते हुए नीचे जोहने पर दृष्टि जमाकर इस तरह कहना शुरू किया जैसे वह अपने आप से कह रही हो "अब तू १८ वर्ष का हो रहा है। जैसे लिया देरह और मर्द मस्तरह। तब लड़का माँ-बाप को अलाह-मशविरा देने के काबिल बन जाता है किन्तु गाँवों में बेटा सदा बेटा ही रहता है। वह काम धंधे के अलावा किसी भी काम में बाप का मित्र नहीं बन सकता। तभी तो तेरे बापू ने कभी यह ध्यान नहीं दिया कि मेरा बेटा अब मोट्यार (जवान) हो गया है। यह तो तेरे सामनेवालों ने इतना तगाजा किया कि तेरे बापू की आँखें खुल गयी वर्ना वे दो-चार बरस तक तुझे और नन्हा-मुन्ना ही समझे रहते। और तू इतनी जल्दी बड़ा रहता है।"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। वहाँ से चला आया। हमारे घर से थोड़ी दूर हमारा खेत था। मैं सीधा खेत की ओर चला गया। मेरी दशा विचित्र थी। मैं एकांत और शांत धोरे (टीले) पर बैठ कर कल्पनाओं में खो गया।

वह दिन सुहावना था। वर्षा थोड़ी देर पहले हुई थी इसलिए रेत बड़ी ठंडी लग रही थी। सारा आसमान बादलों से ढका था। खेतों की ओर जाती हुई पगडंडियाँ पायलों के गीतों से गुंजित थीं। लाल-पीले-धानी केसरिया लहंगे ओढ़नियां और कांचलियां (कंचुकियां) पहनी हुई तरुणियां मचल-मचल कर गा-गा रही थीं।

मुझे लगा—इसी तरह मेरी बहू भी मेरे लिए 'भाता' लेकर खेत आयेगी। माँ कहती थी कि वह उर्वशी जैसी है। अनुपम रूपवती गुणवती और चतुर। तब वह धरिया ओढ़नी में कितनी मोहक लगेगी। उसका रंग और ओढ़नी का रंग मिलकर एक हो जायेगा। तब मेरे हृदय में उसे लेकर नई रंगीन कल्पनाओं की रचना हुई और मैं अत्यन्त उत्तेजित हो गया। क्योंकि पत्नी को लेकर कई तरह की कथाएँ मैं कई बार सुन चुका था।

एक बात आपको बता दूँ कि मेरा विवाह दस वर्ष की उम्र में में ही हो चुका था।

विवाह की घटना भी अति नाटकीय है।

मेरे पिता श्री शिवराम जाटों के मुखिया थे। सामन्ती कालीन परम्पराओं और सभ्यता में पले आन और शान के प्रश्न को लेकर वह धरती को रक्त-रंजित कर देने को तत्पर हो जाते थे। सर्वस्व चला जाय पर मूँछ का बाल न जाय। अपने खानदान में सबसे समर्थ व बड़े भूमिधर थे पिता जी। बहुतों पर उनका कर्ज का अहसान था। दिलेर रात को सोते समय लाठी लेकर सोना घर की दीवारों पर कारतूसें भरी बन्दूकों का लटकना। कहने का मतलब यह है कि वे बहुत ही अच्छे और हठी किस्म के इन्सान थे। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने एक बछड़े के लिए

पाँच सौ रुपये खर्च कर दिये। बात जरा-सी थी कि हमारी गाय का बछड़ा एक दिन भूल से ठाकुर के चचेरे भाई गौरासिंह की हवेली के सामने चला गया। बछड़ा प्यारा था और उसके भूरे रंग के बीच-बीच सफेद धारियाँ हर एक का मन मोह लेती थीं। गौरासिंह को वह बछड़ा पसन्द आ गया। उसने उस बछड़े को अपने खूँटे से बाँध लिया।

जब पहर रात तक बछड़ा नहीं आया और बचारी गाय उसके वियोग में रँभाती रही तब मेरे पिता की आँख । वह अफीम भी खाते थे और अफीम के साथ उनमें एक विचित्र सनक भी थी। जैसे वह अफीम को अपनी हथेली में रखकर कहते 'क्यों आया कि नहीं।

तब उत्तर में कहना पड़ता था 'आ गया चौधरी।

अन्यथा वह इस वाक्य को बार-बार दोहराते जाते और अन्त में उनकी दशा हिस्टिरिया के रोगी की तरह हो जाती थी और वह तोड़-फोड़ पर उतारू हो जाते थे। इसलिए उनके अफीम लेने के समय कोई-न-कोई उनके समीप हाजिर रहता ही था। उस 'आने' का मतलब था नशा आने से।

तो मेरे पिताजी की नींद टूटी। उन्होंने मेरी माँ को पुकारा। 'सीमी।

'गाय बार-बार रँभाती क्यों है?"

'रँभायेगी नहीं तो क्या करेगी? आप नशे में मस्त पड़े रहते हैं और बछड़े का कोई पता ही नहीं लगाता।"

"क्या कहा?" पिताजी एकदम चौंक पड़े। उनकी दृष्टि में विस्मय था।

"ठीक कहती हूँ कि आज बछड़ा कहीं चला गया है। दोनों बच्चों ने उसे बहुत ढूँढा पर उसका पता नहीं लगा। राम जाने बेचारा कहीं किस संकट में होगा?"

"तू चिन्ता फिकर मत कर हैदू की माँ मैं सुबह ही उसे ढूँढ लाऊँगा। अभी गाय के हाथ फेर कर उसे धीरज बँधा दे।"

माँ चली गयी। सचमुच उसने गाय को कैसे समझाया कि उसने रँभाना छोड़ दिया।

रात गज-गामिनी की तरह धीरे-धीरे ढल गयी। भोर का उजाला गाँव पर फैल गया। चहल-पहल होने लग गयी। ठाकुर के बड़ के समीप स्थित मन्दिर के शंख घड़ियालों की पावन ध्वनियाँ सुनायी पड़ने लगी। नगाड़े की ठाक धिना-धिन से गाँव के आलसियों की भी निद्रा टूट गयी जैसे नगाड़े कह रहे थे—उठो मानव-पुत्रो! उषा तुम्हारे स्वागत के गीत गा रही है। नया आलोक तुम्हें नये आह्वान के लिए प्रेरित कर रहा है। ये पावन शंख ध्वनियाँ तुम्हारे अन्तस-पट खोलकर तुममें सत्य का उद्घोष करेंगी। उठो धरित्री के सपूतो!

राभिया गोरी (गायों को जंगल में चरानेवाला) अपने कद से भी लम्बी लकड़ी लिए गायों को हेर-हेर कर इकट्ठी कर रहा था। घरों में दही बिलोने का कर्णप्रिय स्वर "घरर्र्र घू घरर्र्र घू" सुनायी पड़ रहा था।

पिताजी ने मुझे और मेरे बड़े भाई टेमू को बुलाया। हम अभी अभी स्नान कर माथे पे तिलक जिसके चिन्ह हमारे भालों पर विद्यमान थे। उन दिनों हमारे सिर पर आधा-आधा इंची बाल रहते थे। शिखा लम्बी होती थी जो गूँथी हुई होती थी। हम दोनों भाई बड़े ही बेढंगे से हाफ-कुर्ते और अंगिए पहनते थे। पाँवों में पगरखी होती थी जिसका परिमार्जित एवं आकर्षक रूप जोधपुरी-जूती के नाम से अब प्रचलित है।

हम दोनों चुपचाप आकर बैठ गये।

"तुम लोगों ने बछड़े को ढूंढा!" पिताजी ने प्रश्न किया।

"हाँ!" हम दोनों एक साथ बोले।

"कहाँ-कहाँ?"

"सभी जगह। बड़ के उस पार, इस पार और गाँव की सभी गलियों में। बोरों और तरवर के आस-पास।

"तालाब के पार गोचर भूमि गये थे।"

मैंने झट से कहा "मैं गया था।

"वहाँ भी नहीं था ?" पिता जी ने पूछा।

"नहीं।"

पिताजी बड़े गम्भीर हो गये। उनके माथे पर बल पड़ गये। आँखों की पलकें अध मूँदी सी हो गयीं। वे कुछ क्षण मौन होकर बैठे रहे। कभी-कभी वह अपने सिर को घुमाते थे।

"चलो।" कहकर वह उठे। उन्होंने मोटे कपड़े की बगलबंदी पहन रखी थी। उनकी धोती घुटनों के ऊपर रहती थी। वस्तुतः वह धोती नहीं होती बल्कि वह लट्ठे का एक मोटा कपड़ा होता था—ढाई गज का। सिर पर लम्बी चोटी थी जिसमें चाँदी का एक मादलिया (तावीज) गूँथा हुआ था। कानों में सोने की मुर्कियाँ पहनते थे।

उन्होंने नीम की दातुन मुँह में डाली और चल पड़े—रामिया मोची की ओर। मैदान में अनेक गाय-बछड़े इकट्ठे हो गये थे। दो-चार अच्छी नस्ल के धोरे (साँड) भी थे। हमारे पिताजी का कहना था कि ये धोरे टाकुर या शहर से खरीदकर लाये हैं ताकि गायों की नस्ल सुधर जाय। अच्छी गायें और धोरें पैदा हों।

मोची ने पिताजी को देखते ही राम-राम की। पिताजी ने उसे आशीर्वाद दिया। वह छोटी जाति का था। वह घर के बाहर बैठता था। यही वजह थी कि उसके हाथ का छूआ पानी कोई नहीं पीता था।

"क्या बात है काका ?" मोची ने पूछा।

"अरे रामिया तूने मेरा 'कबरा' बछड़ा देखा।"

"नहीं तो ?"

"बड़े अचरज की बात है। ऐसा लगता है कि जमीन बछड़े को खा गयी है।" पिताजी के स्वर में झुंझलाहट थी।

दो चार आदमी इकट्ठे हो गये। बछड़े को लेकर बातचीत चलने लगी। थोड़ी देर में मुखर सुलेमान आ गया। सुलेमान सिर पर सदा पगड़ी बाँधता था—लाल रंग की। जाति गुण उसमें मौजूद था। माने उसे

गायों की बड़ी पहचान थी। वह बीस गायों का धनी था। गायों और बछड़ों को इतना आराम से रखता था जितना छोरे-छोरियों को। शहर के हाट में उसका घी दूध और मक्खन बड़ी शान और चाव से बिकता था।

उसने बीड़ी सुलगाकर कहा "ऐ रामजी चौधरी काका आज सवेरे सवेरे राम राम की जगह हाय-हाय क्यों लगा रखी है।

क्या करूँ? कल से बछड़ा खोगया है और उसका पता भी नहीं चल रहा है। बड़े अचरज की बात है?

"क्या कह रहे हो चौधरी?"

"हाँ सुलेमान बछड़ा भी ऐसा था लाखों में एक। क्या रंग और क्या गर्दन-पीठ? मैं उसकी माँ को इतना दूध खोलता था कि उसकी दूध पीते-पीते गर्दन और पीठ एक-सी लगने लग गयी थी।"

"यह तो बड़ा जुल्म हुआ आप पर। किन्तु आखिर बछड़ा जायेगा कहाँ?"

"इसी बात को लेकर तो मैं भी हैरान हूँ।

"सौ बात की एक बात यह है कि बछड़ा जंगल में भटक गया होगा। अपने आप आ जायेगा।" राधिया मोरी ने कहा "आज मैं दूर-दूर तक जाऊँगा। गायों को देखकर रास्ता भूला हुआ बछड़ा अपने आप आ जाता है। काका! आप चिन्ता-फिक्र न करें।"

"तेरी जबान सच हो। मेरा बछड़ा घर आजायेगा तो मैं समझूँगा कि मेरे घर सोने का सूरज उगा है। कितना जानदार बछड़ा है।"

"यह सूरज उगा ही समझो।"

यह सब बातचीत हो ही रही थी कि तभी लाछा मालजी बामणी आयी। पिंडलियों तक पीली छींट का घाघरा कांचली जिससे उसकी आधी पीठ साफ दिखायी पड़ रही थी। सिर पर गुलाबी ओढ़नी। यह मदई हरलाल की बेटी है। पिता की मृत्यु के बाद लाछा घर-घर काम काज करती है और जो कुछ भी मिल जाता है उससे अपना और अपनी विधवा माँ का पेट भरती है। उसकी उम्र पन्द्रह बरस की है। वह परि

लगता है। उसके पति ने उसे यह आरोप लगाकर छोड़ दिया कि वह छिनाल है। वह हर घड़ी किसी न किसी से खुसर-फुसर करती रहती है। लाछां को इसका कोई गम नहीं। वह अपने आप में मस्त है।

लाछां ने मटक मटकाकर कहा "चौधरी काका !"

"क्या है ?

उसके चेहरे पर नटखटपन नाच उठा। अपने ओठों पर हास्य बिखेरती हुई वह बोली "काका बछड़ा खोज रहे हो ?"

"हां-हां। तूने उसे कहीं देखा है ?

"हां।"

"कहां ?"

"घर में छोरा नगर ढिंढोरा। काका तेरा बछड़ा मोतीसिंह के 'ठाण'[1] बंधा हुआ है।

"सच।"

"हां काका। लाछों की देखी कभी भी झूठी नहीं होती है। मुझ पर भरोसा नहीं है तो जाकर अपना भ्रम दूर कर आओ।" लाछां कमर लचकाती हुई चली गयी। वह जब चलती थी तब उसका सारा अंग विचित्र ढंग से मुड़ता था जैसे वह कोई नर्तकी हो और उसकी चाल भी नृत्य का एक अंग हो।

चिमनो उसी वक्त मोतीसिंह के पास गये। मोतीसिंह अपनी बैठक में चार-टांगे का सहारा लिए हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। दो-चार चाकर उसकी ही हजूरी में बैठे थे। कलाल उसकी दाढ़ी बना रहा था।

चिमनो ने जाते ही अदब से कहा "जै माताजी की छोटे ठाकुर सा।"

"आओ चौधरी आओ आज सुबह-सुबह ही रास्ता कैसे भूल गये ? कलाल का उस्तरा रुक गया। मोतीसिंह की आंखें बड़ी-बड़ी और हिंस्र थीं। मूंछें इतनी लम्बी थीं कि वह उन्हें अपने दोनों कानों से लिपटाये रहता था। वह अपनी मूंछों को छाछ और दही से धोता था और उन

---

१ ठाण—पशुओं के बांधने की जगह।

पर मक्खन लगाना था।

"मेरा बछड़ा भूल से आपके यहाँ आगया है, उसे लेने के लिए आया हूँ।" पिताजी ने गम्भीर होकर कहा।

"भूल से ? नहीं चौधरी इसे हमने जान-बूझकर बाँधा है। यह हमें पसंद है। इसके रंग-रूप ने हमें मोह लिया छिपा है। हमारा विचार है कि हम इसे अपने रथ का बैल बनायेंगे। यह नागोरी बैलों को भी मात करेगा।

"पर यह बछड़ा मैं किसी को भी नहीं दे सकता इसे मैं शिवजी का साँड बनाऊँगा।

"हमारी इच्छा के विरुद्ध।"

"मेरी चीज पर मेरी मर्जी चलेगी छोटे ठाकुर।"

"नहीं। आखिर हम इस गाँव के छोटे ठाकुर हैं। हमारी बात ही रहेगी इस बार।

"यह सही है ठाकुर सा कि राजा के चलने का रास्ता प्रजा के माथे पर से जाता है पर मैं भी चौधरी हूँ इन सटके चले जायेंगे पर मेरी साख (मान) नहीं जायेगी।" कह कर पिताजी वहाँ से चले आये। वह सीधे बड़े ठाकुर सरदार सिंहजी के पास गये। सरदारसिंहजी ने सारे मामले को सुनकर आज्ञा दे दी कि तुम अपना बछड़ा ले जाओ। मधु की कौन मीठी और कौन खारी (जहरीली) ? मेरे लिए सब बराबर है।'

पिताजी एक बार फिर गये। मोतीसिंह नहीं माना। मामला संगीन हो गया। गाँवों में जाटों की भी संख्या बहुत थी। एक दिन वे सभी पिताजी के निर्देश में मोती की हवेली पर चढ़ बैठे। इस संघर्ष में मोतीसिंह के एक नौकर की हत्या हो गयी और बछड़ा पिताजी के घर आगया। मोती सिंह इस हमले से इतना डरा कि कुछ दिन वह हवेली से बाहर भी नहीं निकला। इसकी एक वजह यह भी थी कि गाँव के बड़े ठाकुर सा ने उसे कोई भी मदद नहीं दी। उन्होंने साफ-साफ कह दिया— "मैं अन्याय का साथ नहीं दे सकता। अब जिसकी लाठी होगी उसे भैंस मिल जायगी।"

इसके साथ ठाकुर को अपने छोटे भाई गौरांसिंह से कुछ भय भी हो गया था इसलिए उसका मान-मर्दन करना जरूरी समझते थे।

लाठी पिताजी के पास ही रही। आखिर वह सम्पन्न चौधरी थे और कुछ उनका परिवार भी बहुत लम्बा-चौड़ा था। दादा-बाबा और कुटुम्ब कबीले के सारे लोग मिलकर लगभग पन्द्रह-बीस लाठियाँ एक साथ बाहर निकालती थी। इसलिए उनका सारे गाँव में बड़ा आतंक था। गाँव में एक करोड़ पति के अलावा दो-तीन लखपति भी थे किन्तु वे परदेश में ही रहा करते थे। वे मरने-परने (विवाह) पर ही गाँव आते जाते थे।

कुछ महीने बाद एक दिन बड़े ठाकुर सा ने गौरांसिंह और पिताजी को बुलाया। आमने-सामने बिठाया। अमल-पानी की गोठ (दावत) करवादी। दिल का द्वेष मिट गया। मन का मैल धुल गया। दोनों की रात उस दिन मादक थी। गौरांसिंह की हवेली में ढोलनियों का नाच हुआ। निरन्तर लोक-गीतों की सुधामयी धारायें बहती रही। अनेक गीत गाये गये। मेंहदी भी सुनायी गयी।

मैं थी बाई-बाई बालूड़ा री रेत प्रम रस मैं दी रचणी
मैं थी सींची-सींची जमना रे नीर
प्रम रस मैं दी रचणी [1]

आधी रात को पिताजी लौटे। उसी रात जो नौकर मरा था उसकी बेवा को पिताजी ने पाँच सौ रुपये दिये। पिताजी उस दिन बड़े खुश थे। वह चैन की बंसी बजाते हुए सो गये। उनकी मूँछ का बाल रह गया।

इस तरह मेरे पिताजी आन के धनी थे। प्राण जावे पर आन नहीं जाने पाये।

मेरा बड़ा भाई चौदह बरस का हो गया था। मैं उससे चार वर्ष छोटा था। बहुत ही दुबला पतला मरीज था जिससे मैं और भी छोटा लगता था। मेरा मन पढ़ने में खूब लगता था। मैं बिना गैरहाजिर के स्कूल जाता

१ राजस्थानी लोक गीत मेंहदी। [अर्थ—बालू रेत में मेंहदी बोई जमुना के जल में सिंचाई की प्रेम रस से भरी यह मेंहदी खूब रच आई है।]

को सांझा से नहीं मिलने देती ? और जब वह सांझा से मिलता है तब मां उसके विवाह की चिंता क्यों करती है ? मेरे मस्तिष्क में अनेक प्रश्न उठते रहते थे। ये प्रश्न मेरे अपरिपक्व मन में केवल जिज्ञासायें बना कर रह जाते थे।

सुबह-सुबह ही मैं लोटा लेकर जंगल की ओर चला। जंगल जाते हुए सारे गाँव को पार करना पड़ता था। कच्ची मिट्टी के बने घर, दो चार पक्की हवेलियाँ और बीच-बीच में घास के गोलाकार झोंपड़े। सावन का महीना था। हरियाली जग-जग दिखायी पड़ रही थी। छोटे नीम पीपल कीकर और बेर की कोंपलें लहलहा उठी थीं। मैं काफी दूर जंगल में निपटने जाया करता था। लगभग एक मील चलने के साथ ही मैंने देखा—टीले की ओट में सांझा और तेजू बैठे हैं। ये दोनों उम्र में बराबर थे।

सांझा तेजू के बालों में उँगलियाँ उलझाये हुए थी और तेजू उसके कपोलों पर हल्का-हल्का हाथ फेर रहा था। मैं विमूढ़-सा खड़ा रहा। जब मुझे होश आया तब मैंने स्वभाव के अनुसार खंखार दिया। वे दोनों एकदम चौंक गये। चार आँखें दौड़ कर मुझ पर टिक गयीं। मैं शर्म से घबरा उठा।

सांझा ने पुकारा — सरवण !

उसके स्वर में किसी तरह की झिझक और घबराहट नहीं थी। मैं वहीं पर खड़ा रहा। मेरे पाँव रेत में धंस से गये। चेहरा उदास-सा हो गया। मैं एक पाँव भी आगे नहीं बढ़ सका। मुझे अपनी इस हरकत पर ग्लानि हो रही थी।

सांझा ने किलकते हुए मुझ से कहा 'अरे! आ न डरता क्यों है, मैं कोई डायन थोड़ी ही हूँ कि तुझे खा जाऊँगी।"

मैं उनके पास चला गया। तेजू की दृष्टि झुकी हुई थी। उसकी मुद्रा से ऐसा लग रहा था जैसे उसने कोई घोर अपराध किया हो।

सांझा ने अपने गूंजे (जेब) से मुझे एक पैसा निकाल कर दिया,

"तू किसी को कहना मत कहेगा तो तेजू को बापू बहुत पीटेंगे ।"

मैंने उसे विश्वास दिलाया "मैं किसी को कुछ भी नहीं कहूँगा ।" किन्तु मेरे अबोध मन को बार-बार क्यों लग रहा था कि मैंने यह अच्छा नहीं किया ? मैं वहाँ से चला आया—उदास-उदास सा ।

दोपहर को सोंझा ने मुझे फिर लपक लिया । पाठशाला के बाहर दाईं ओर कुआँ था । कुएँ की छतरियों की गहरी छैया में उसे सोंझा ने मुझे पास लेकर कहा, "तूने यह बात किसी को कही तो नहीं ?"

'नहीं'। अपने सिर को हिलाकर मैंने कहा ।

"तू किसी को नहीं कहेगा तो मैं तुझे बहुत चोखी-चोखी चीजें लाकर दूँगी ।"

"पर माँ बापू से कह रही थी कि वह जल्द से जल्द तेजू का ब्याह कर दे । वह आजकल लुक-छुप कर सोंझा से मिलता है ।"

"सच !" इतना ही कह पायी वह और अपने चेहरे पर संघर्ष के भाव लिये चली गयी ।

आज जब मैं उस क्षण के सोंझा के चेहरे को गंभीरतापूर्वक याद करता हूँ तो लगता है कि उन गहरी नीली आँखों में ब्याह की बात सुन कर धरती की सारी करुणा तैर उठी थी । सोंझा का हृदय पीर से भर आया था । आँखें आँसुओं के बादलों में डूब गयी थीं ।

और एक दिन सोंझा सरोवर की पाल पर स्नान करते तेजू से कह रही थी "लाग (प्रेम) लगी फिर डर कैसा ? तेजू मैं धाविन जरूर हूँ पर तुझे मन से चाहती हूँ ।"

तेजू ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया । वह पानी में छलांग मार कर तैरने लगा ।

दिन गुजरते गये । ब्याह का दिन निश्चित हो गया ।

भादों और असोज (आश्विन) बीत गये । कार्तिक के पहले सप्ताह की बात है ।

रामिया मोदी चीखता हुआ आया "चोरी चोरी चोरी !"

पिताजी अमल लेकर बैठे ही थे। गोरी को चीखते हुए देखकर वे हड़बड़ा कर घर से बाहर आये। चीमता से पूछा "क्या है राधिया ?"

"चौधरी हम कालीबार डूब गये[1]।"

"बात क्या है !" एकदम घबरा उठे पिताजी।

गोरी ने रोते हुए कहा "तेजू तालाब में ।"

पिताजी जैसे खड़े थे वैसे तालाब की ओर भागे। माँ ने वैसे ही सुना वह पागल की तरह नंगे पाँव दौड़ पड़ी। मैं भी भागा। तालाब शब्द के साथ जो दुष्कल्पनाएँ हो सकती हैं वे हमारे मनों में दौड़ पड़ीं।

तालाब पर बड़ी भीड़ थी। उन दिनों इन्सानों में एक बात थी—बैर-तो-बैर नहीं तो प्यार। छल-कपट नहीं था। प्यार करके वार नहीं करते थे। इस दुर्घटना का समाचार सुनते ही भीमसिंह भी आ गया। तेजू को तैर कर लाछा निकाल लायी थी। भैया का पेट फूल गया था। लोगों ने तुरन्त तेजू को उलटा लटकाया। उसके मुँह से पानी गिर रहा था।

सुलेमान भी भीगा हुआ था। वह पिताजी से कह रहा था "हल्ला सुन कर मैं अपने सूप लाते पशों छोड़ कर भागा। पर मुझसे पहले लाछा पानी में छलाँग लगा चुकी थी। वह तूफान की तरह तेजू की ओर बढ़ रही थी किन्तु उसके पहुँचते-पहुँचते तेजू तलछट की ओर चला गया था। फिर तो कई आदमी आ गये। पर लाछा ने बहुत फुर्ती दिखायी। अब वह दीवानी-सी पानी में घूम रही थी।"

वैद्यजी आ गये थे। उन्होंने उलटे किए हुए तेजू को देखा। नाड़ी देखी। उनके चेहरे की हवाइयाँ उड़ने लगीं।

पिताजी ने तड़प कर पूछा "क्या बात है वैद्यजी ?

वैद्यजी बहुत देर तक बोले नहीं। पिताजी की व्यग्रता बढ़ती गयी। अन्त में वैद्यजी बोले "दिल पर पत्थर रखो चौधरी।" वैद्यजी सिसक पड़े।

---

1 सर्वनाश हो गया।

पंचजी का इतना कहना था कि माँ पागल-सी तेजू से लिपट गयी। उसकी दहाड़ से मेरा कलेजा काँप उठा। वह अपने दोनों हाथों से सिर को पीट रही थी। कभी-कभी वे हाथ उसकी छाती पर पड़ जाते थे और वह लाश पर लोट कर जलहीन मछली की तरह तड़प उठती थी। माँ को रोते हुए देखकर मुझे भी रोना आ गया। मैं सुबक-सुबक कर रोने लगा। सुलेमान ने मुझे अपने सीने से चिपटा लिया। उसकी आँखें भी भर आयी थीं।

तभी किसी ने आकर कहा "सुलेमान चूथ"।"

उसने अपनी आँखों को पोंछ कर कहा 'चूल्हे में जाय चूथ।' और वह मुझे पुचकारने लगा "रोते नहीं बेटा रोते नहीं यह सब भगवान के खेल हैं।"

सोंधा खड़ी-खड़ी अश्रु बहाती रही। फिर वह बिना किसी से कुछ कहे तेजू का कुर्ता लेकर चली गयी।

माँ का रोना पूर्ववत था। वह सिर पटक-पटक कर कह रही थी "मुझे अपने लाड़ले के साथ जलाओ। हाय! मेरी गोद का एक हीरा चला गया। मेरा कलेजा निकल गया। मेरा राम मुझसे बिछड़ गया।"

दूसरी स्त्रियों ने उसे पकड़ा धैर्य दिया और समझाया। साथ घर लायी गयी।

सारा खेल थोड़ी देर में समाप्त हो गया। मैं बहुत रोया।

गौरीसिंह उन दिनों सदा पिताजी के पास आते थे। उन्हें धैर्य देते थे। साहस बंधाते थे। पिताजी हर बार यही कहते थे "मेरी कमर टूट गयी है छोटे ठाकुर!"

और सोंधा?

मैंने देखा—वह एकदम बदल गयी है। वह उसी टीले के पास बैठी रहती है। मैं उसके पास जाता हूँ। पूछता हूँ—सोंधा! भैया को यह लोग कहाँ ले गये ना अब भैया कभी नहीं आयेंगे। सभी लोग कहते हैं कि भैया मर गये हैं। अपनी दादी भी मर कर फिर वापस नहीं

जाती। मर कर लोग वापस नहीं लौटते।" मेरी आँखें भी भर आतीं।

वह फूट पड़ती। मुझे अपने सीने से चिपका लेती। रोदन भरे स्वर में कहती "हाँ सरदल अब भैया नहीं आयेंगे कभी नहीं आयेंगे वे हमें छोड़ कर चले गये।"

"क्यों ?"

"वह भगवान के पास चले गये हैं।

"हम क्यों नहीं चलते ?"

उसके पास कोई उत्तर नहीं होता था। सावन की भाँति उसकी अँखियाँ बरसती रहती।

एक दिन मैंने पूछा "जीजी भैया तेरे क्या लगते थे ? तू उसके लिए क्यों रोती है ?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल उसकी आँखें डबडबा आयीं। विपुल विषाद था—उसकी आँखों में।

घर में गहरी उदासी छायी रहती थी। भैया की मृत्यु का गम सभी को था। उसकी मृत्यु ने सभी के ओठों की मुस्कान छीन ली थी। हम दोनों साथ-साथ सोते थे। रात को मैं किसी-न किसी बहाने माँ को पूछ ही लेता था—भैया के बारे में। माँ उत्तर में आठ-आठ आँसू रोया करती थी। कभी-कभी पिताजी मुझे डाँट देते थे और समझाते थे कि मैं माँ से ऐसा प्रश्न न किया करूँ।'

दिन गुजर रहे थे।

× × ×

एक दिन पतराम जी हमारे घर आये। भैया की दुखद मृत्यु का उन्हें बड़ा संताप था। वह काफी देर तक भैया के गुणगान करते रहे। अन्त में उन्होंने विनम्र शब्दों में कहा, "फिर चौधरी जी, मैं अपनी सीता को किसी दूसरे घर में दे दूं?"

"नहीं।" पिताजी ने दृढ़ता से कहा जैसे उत्तर उन्होंने पहले से ही सोच रखा हो।

"क्यों?" वे आश्चर्य से बोले।

"पतराम जी, आपकी बेटी दूसरे घर नहीं जा सकती। यह मेरी इज्जत का सवाल है। घर की आन का सवाल है।"

"तो क्या मैं अपनी बेटी को जीवन भर अपने घर में बिठाये रखूंगा? चौधरी जी, बेटी। सोने की लंका के राजा रावण के घर में भी नहीं समायी थी। मैं तो अकिंचन शूद्र। इस बोझ को अब एक पल भी नहीं ढो सकूंगा।"

"इसकी आप चिन्ता न करें। आपकी बेटी के हाथ पीले होंगे। वह मेरे ही घर में बहू बन कर आयेगी। कैसे आयेगी यह मैं आपको बाद में बताऊंगा।"

पतराम जी चले गये।

घर में इस बात को लेकर एक सभा जुटी। उसमें यह निश्चय किया गया कि पतराम जी की बेटी सावित्री (उसका नाम सावित्री ही था।) का गठ-बन्धन किससे किया जाय? चारों ओर नजर दौड़ायी। परिवार बहुत बड़ा था। भरापूरा था किन्तु उसमें ऐसा कोई जवान नहीं था

जिससे सावित्री का विवाह कर दिया जाय। पर पिताजी अपने हठ पर अड़े हुए थे।

इधर फागुन आ रहा था। विवाह की साधारण सी तैयारियाँ होने लगीं। कौन दूल्हा बनेगा यह रहस्य सा ही बना हुआ था। इस बीच पिताजी ने गाँव के नाइ छोकरे द्वारा पतराम जी से कहलवा दिया था कि आप पतराम जी जो यह देखा कि चौधरी शिवराम जोशी ने आपकी बेटी लेकर ही जायेगा वर्ना इसका परिणाम बुरा ही निकलेगा।

पिताजी का आतंक था ही। एक साथ कई लाठियाँ घर में से निकली थीं। पर दूल्हा कौन बनेगा यह पिताजी ने नहीं बताया। कभी कभी इस रहस्य को लेकर परिवार वाले उन्हें उदास करते थे तो पिताजी एकदम अधीर होकर उन्हें डाँट देते थे। समर्थ का कोई दोष नहीं समझा जाता। सब चुप हो जाते थे। सोचते थे—जो होगा वह देखा जाएगा। हाँ गोरा सिंह और पिताजी अक्सर एकान्त में बातें करते थे।

आखिर वह दिन आया। पिताजी ने गाँव की ओर यह घोषणा की कि दूल्हा मेरा बेटा 'सरवण' बनेगा। पर मैं दूसरी अधिक बातचीत नहीं हुई क्या कि गाँवों में इसके पहले भी प्रायः ऐसी शादियाँ हो चुकी जिनमें दूल्हे छोटे और बहू बड़ी होती थी।

बरात चली। बरात में पचास आदमी थे। गोरा सिंह और गुलेमान थी। ठीक समय बरात पहुँची। गोरासिंह दुनाली बन्दूक लटकाये हुए था। उसका बरात में बड़ा रौब था। घर के आगे ढालनियाँ गुस्स गीत गा रही थीं। घर के भीतर स्त्रियाँ मंगल-गीत गुँजा रही थीं।

पतराम जी ने पूछा "दूल्हा कौन है।"

"मेरा छोटा बेटा सरवण।" पिताजी ने दबे दबे से चुप करते हुए कहा।

एक बार सब में सनसनी सी फैल गयी। पतराम जी ने जैसे ही वह सुना वैसे ही उनके पाँव जमीन से खिसक गये। वह चुप रहता

चाहते थे किन्तु उनकी जबान लड़खड़ा कर रह गयी। पिताजी को एक बार ले गये। शेष बराती खाने-पीने में मस्त थे। हमारे ऊँटों व बैलों को घास और पाला (बेर की झाड़ियों की पत्तियाँ) डाला जाने लगा।

मैं अबोध था। जैसा मुझे कोई कहता था। मैं वैसा ही करता था। मेरे तमाम शरीर पर आटे व घी का उबटन किया गया था। मुझे नहलाया गया था। नये वस्त्र पहनाये गये थे।

पतराम जी ने कहा "यह नहीं हो सकता, आपके कुँवरसा मेरी बेटी से चार वर्ष छोटे हैं।"

"तो क्या हुआ?"

"उसकी जिन्दगी बरबाद हो जाएगी।"

"इसलिए कि उसका पति छोटा है? चौधरी अपनी बेटी के भाग्य को भी देखो। मँगनी के साथ अपने मंगेतर को खा गयी। अब तुम बाजार में मेरी पगड़ी उछालना चाहते हो। लोग कहेंगे कि शिवराम की बहू दूसरे के घर चली गयी। यह मैं नहीं होने दूँगा। यह मेरी इज्जत का सवाल है।"

"आप मेरी विवशता पर गौर कीजिये। इसमें किसी का भी जीवन सुखी नहीं होगा।"

"भाग्य सबसे बड़ा होता है। अपनी बेटी के भाग्य में जो कुछ भी लिखा होगा उसे भुगतना ही पड़ेगा। विधि का लेख अमिट है।"

"पर मैं? और फिर आपने मुझे धोखे में रखा, मैं जान बूझ कर आँखें कैसे बन्द करलूँ। अपनी बेटी को कुएँ में कैसे धकेल दूँ?"

"फिर मुझे...।" वह कहते-कहते चुप हो गये। "एक बार फिर सोच लो चौधरी। मेरे हाथ से कोई अनर्थ घटन हो इसके पहले हाँ भर लो।" पिताजी ने उन्हें चेतावनी दी।

पतराम जी जनानखाने में गये। थोड़ी देर बाद वह लौटे। उदास और खिन्न थे। उनकी आकृति से लगता था कि वह बीमार हैं। उनकी चाल से ऐसा प्रतीत होता था कि उनकी टाँगों का बल ही जाता रहा

है। वह पिताजी के पास आये। पिताजी गौरांसिंह के पास बैठे थे
कदाचित पिताजी ने गौरा सिंह को बातचीत के बारे में बता दिया था
इसलिए वह अपनी मुखाकी को साफ करने लगा। उसकी आकृति प
हिमा की लहरें नाचने लगीं।

कहिए समधी जी क्या विचार ?"

पतराम जी कोई उत्तर दे इसके पहले ही गौरांसिंह ने मुखाकी क
खड़ी करके कहा "हमारी बहू दूसरे के घर और घर को नहीं जाएगी
उसके पाँव हमारे ही तोरण-द्वार को छुएँगे।"

"आपकी यही मर्जी है तो मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं नहीं चाहत
कि एक छोकरी के पीछे खून-खराबी हो। बेटी तो पेट दुखने से भी म
जाती है।" पतराम जी एकदम घबरा उठे।

विवाह हो गया।

मुझे शायद फेरों के समय झपकियाँ आ रही थी। विवाह की धुंधल
धुंधली स्मृति आज भी मुझे याद है। एक अजन्ता-भित्ति चित्र सी ह
घुमड़-सलोनी के हाथ मेंहदी से रचे हुए थे। वह मेरे पास बैठी थी
उसका रंग गोरा था। मुझे एक विचित्र सा आनन्द आया। अग्नि क
पावन अनुष्ठान आरम्भ हो इसके पूर्व ही मैं समस्त दुखों-सुखों से दू
करने वाली निद्रा की गोद में खो गया। यामिनी की माँग का सिन्दू
में कब बना मैं नहीं जानता। मुझे बार-बार उठाया जाता था प
निगोड़ी नींद मुझे पल भर के लिए भी नहीं छोड़ रही थी। मैं दूल्हा ब
गया। किसी के जीवन-स्वप्न का स्वामी।

× × ×

इसके बाद मैं अपनी पढ़ाई में लीन हो गया। शहर जाकर पढ़ने लगा। देश स्वतन्त्र हो गया। |भारत के लोगों में सामन्ती और→ पाश्चात्य संस्कृतियों का सम्मिश्रण दिखने लगा। अजीब स्थिति थी उनके दिमागों की। इधर नारी स्वतन्त्रता पर भाषण देते थे और उधर अपनी स्त्रियों को घूंघट के बाहर झाँकने नहीं देते थे। नौकरशाही का बोलबाला था। धर्म की बात और पाप का कर्म।|

मैं कालेज में पढ़ता था। हर वर्ष गाँव जाता था। हर दफा माँ और पिता जी में मेरे गौने को लेकर वाक्य-युद्ध होता था। माँ कहती थी "बहू बड़ी हो गई है। जवान बेटी पीहर में नहीं रह सकती। वे लोग हमें तंग करते हैं।"

पिता जी कहते थे "पढ़ाई खत्म होते ही गौना हो जाएगा। आखिर तू समझती क्या है नरबदा की माँ? क्या मैं चाहता हूँ कि मेरी फूल-सी सुन्दर बहू मेरे बेटे से जुदा रहे? पर आदमी के जीवन के अपने कुछ ध्येय होते हैं। मैं चाहता हूँ—मेरा नरबदा साहब बने। अरी! तू नहीं जानती अपना यह नरबदा हरिजन है न नेता बन गया है। यह राजाओं और ठाकुरों के साथ बैठता है—एकदम बराबर।"

माँ चिढ़कर कहती, "बैठता है तो बैठता रहे। कलियुग में यह नहीं होगा तो और क्या होगा? पर मैं अपनी बहू को अब उसके पीहर नहीं रख सकती। दूसरी स्त्रियाँ तो मुझे ही ताने देती हैं।

"तू समझती क्यों नहीं? घर में बहू आ जायेगी तो तेरा लाडला पढ़ना-लिखना तो बन्द कर देगा और भाग-भागकर आयेगा शहर से गाँव।"

आयेगा तो आता रहे। मैं चाहती भी यही हूँ कि मेरा बेटा अब मेरे पास ही रहे। मेरे कौन से पाँच दस बेटे हैं? मेरा हृदय उसे घड़ी भर के लिए भी अपने से विलग करना नहीं चाहता। कितना अच्छा होगा कि मेरा बेटा मेरी आँखों के सामने रहने लगे।"

"औरतों की अक्ल ऐड़ी में होती है।" पिताजी ने झुँझलाकर कहा।

"मर्दों की अक्ल माथे में होती होगी।" वह कुछ रुष्ट होकर बोली "आप मेरी बहू को लायें बस।"

माँ ने हठ पकड़ लिया। त्रिया-हठ प्रसिद्ध होता है। पिताजी कुछ दिन अकड़े रहे पर माँ के असहयोग पर पिताजी को पराजित होना पड़ा। मेरा गौना हो गया। [उस समय मेरी उम्र अठारह की थी और मेरी पत्नी की उम्र बारह की। उसका शरीर भी बड़ा हृष्ट-पुष्ट था। उसकी देह अजन्ता की सुडौल मूर्तियों की तरह थी। गज-गामिनी। गोरा रंग। बड़ी-बड़ी कजरी आँखें। मैं अब पूर्ण जिज्ञासा लिए उस अपूर्व रूप को देखता रहा। सौन्दर्य उसकी हर अदा में समाया हुआ था। और मैं सच मैं उसके समक्ष छोटा-सा लगता था। वह मुझे बालक की तरह गोद में उठा सकती थी। क्योंकि मेरा स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं था। मैं परेशान सा रहा। मेरा मन एक विचित्र उदासी और चिन्ता से भर गया। सोचता रहा\'यह मेरी बहू है। इतनी बड़ी लमलमाती घोड़ी की तरह। मेरा जीवन खराब हो गया। मुझे शर्म आने लगी। एक हीनता की भावना मुझ में उत्पन्न हो गई। मैं चुप-चाप घर में पड़ा रहा।]

आस-पास की लड़कियाँ मेरी बहू सावित्री को घेर कर बैठ गईं। हास-परिहास चल पड़ा। उसके रूप की सभी प्रशंसा करती थीं। किन्तु कुछ लड़कियाँ हैरान होती हैं। एक ने मुँह बिगाड़कर कहा, "कितना बड़ा जुल्म हुआ है यह जोबन और यह भरतार (प्रीतम)। गोद में खिलाने लायक है।"

और भी हँसी।

मैंने किवाड़ के गोल सुराख से देखा—सावित्री लाज से गड़ गई है।

उसकी उदास दृष्टि चारों ओर दौड़ा कर ज़मीन की ओर झुक गई है। व्यथा की छाया मुखड़े पर फैल गई है।

यह मज़ाक किसी को अच्छा नहीं लगा। और मुग्धा ने किसी दुर्भावना से भी यह नहीं कहा था। हँसी-मज़ाक करना उसका स्वभाव था। बहुत अधिक बोलती थी वह इसलिए उसके मुख से कभी-कभी अनुचित बात भी निकल जाती थी। उसे भी तुरन्त इसका ख्याल हो आया। वह चुप हो गई। अपराध की गहरी रेखाएँ उसके मुख पर नाच उठीं।

माँ आ गई थी। माँ के आते ही सावित्री ने अपने पुंडरिक मुख पर केसरिया घूँघट खिसका लिया। माँ स्तब्ध सी उसे देखती रही। उसके मुख से भावुकतावश निकल पड़ा "ऐसी सुन्दर बहू दीया लेकर ढूँढ़े तो भी नहीं मिलेगी।"

मुझे यह सब अच्छा नहीं लगा। मैं घूमकर सीधा लीला के पास गया। लीला चर्खा कात रही थी। उसके घर के सम्मुख लगा हुआ पेड़ बढ़ रहा था। उसकी माँ मर गई थी। आजकल वह हज़ारों तारों के बीच चाँद की तरह अकेली थी। उसका संसार में अपना कहने को कोई नहीं था। था तो वह पेड़। जब यह पेड़ पवन के झकोरों से झूमता तब उसके अथाह उन्माद में फिर चेहरे पर हास्य की दीप्ति नाच उठती थी और उसकी पलकों के कोने ओर मुख के अश्रुओं से भीग जाते थे।

मुझे देखते ही लीला ने चर्खा चलाना बन्द कर दिया जब वह चर्खा कातती थी तब उसके साथ यह गीत भी गुनगुनाती रहती थी—

चाल रे चरखला हाल रे चरखला
ताकू तेरो सोवरण लाल गुलाबी माल
चरड़ूं-चरड़ूं फिरे घेरणो मधरो-मधरो चाल [1]

---

१ चरखा चल रे चल तेरा ताकू अच्छा है और डोरी लाल गुलाबी रंग की है। तेरा घेर चरड़-मरड़ कर फिरता है तू मीठी ध्वनि के साथ चल।

मीरा का स्वर बड़ा मीठा था—कोयल जैसा।

"क्या है सरवण ?" उसने मेरी ओर देखकर कहा।

मुझे अपने मन की बात कहने में शर्म आ रही थी। दुख अन्तस में तड़प कर आँसू बन गये।

"अरे, तू रोता है ? क्यों ? आज तो तेरी बहू आई है। तुझे खुश होना चाहिए।

"वह बहू ...।" मैं कुछ कह नहीं पाया।

वह बीच में बोल पड़ी "बहू बड़ी है तो क्या हुआ ? सरवण बड़ी बहू के बड़े भाग्य होते हैं। फिर भाग्य का लिखा कौन मिटा सकता है ? तेरे पिता जी गाँव के धनी हैं वह गाँव के पीछे जान दे सकते हैं। तुझे बलिदान कर दिया तो क्या हुआ ?" उसके स्वर में व्यंग था। वेदना भी।

मेरे मस्तिष्क में हजारों हथौड़े चल रहे थे। पीड़ा ऐसी थी जैसे सहस्त्र सर्प एक साथ दंशन कर रहे हों। मैं तिलमिला कर बोला "नहीं मैं यहाँ से भाग जाऊँगा। भाग जाऊँगा।"

"क्यों ?"

"मुझे इतनी बड़ी बहू पसंद नहीं।" मैं एकदम आवेश में चीखा।

"तू भाग जायेगा ? भाग जा। पूरे गाँव उस गरीब कि। गलती तेरे बाप ने की और दंड देगा उस मजबूर को ? उस 'भाग' ने तेरा क्या बिगाड़ा है ? उसने तेरा हाथ बजुर्गों के साथ में अपने हाथ में लिया है।" उसने अपने आपको संयम करके पुनः कहा "अगर इस बात की भनक भी तेरे बापू जी पड़ गयी तो वह तुझे छठी का दूध याद दिला देंगे जानते हो उनके गुस्से को ?"

पिताजी का आतंक मुझपर सदा सारे गाँव पर था। मेरा रोम रोम उनकी बरसती हुई दृष्टि से काँप जाता था। मीरा के कथन के साथ मैं एकदम भयभीत हो गया।

तभी छापरिया दौड़ा-दौड़ा आया "सरवण सरवण तुझे चौधरी

काका बुला रहे हैं।"

"जा सरवण! सीधे घर चले जाना और किसी तरह की गड़बड़ी मत करना।"

मैं चला आया। शायद पिताजी को मेरी परेशानी का परोक्ष रूप से भान हो गया था। अतः वह मेरी पीठ थपथपाते हुए बोले "घबराने की कोई बात नहीं है। मर्द बच्चे का क्या छोटा? पाँच छः माह दंड-बैठक की कि दीवार तोड़ने लग जाएगा। हनुमान सा बलवान बन जाएगा।"

शर्म से मैं और गड़ गया। सच मैं उन दिनों अधिक नहीं सोच पाता था केवल मेरा मन घुटता रहता था। मुझे महसूस होता था कि मेरे चारों ओर धुआँ ही धुआँ है और एक दिन उस विषाक्त हवाओं की लहरों में मेरा दम घुट जायेगा।

मैं पिताजी के समक्ष मुँह उतारे बैठा रहा। पिताजी ने क्षण-भर के लिए आँखें मूँदी फिर नीले आकाश की ओर देखकर वे बोले "जब इज्जत-आबरू का सवाल उठता है तब मैं हर वस्तु को उसके लिए तुच्छ समझ कर निछावर कर देता हूँ। बात से ही बात का पता लगता है। मैं बात के लिए अपने आपको भी बलिदान कर सकता हूँ।" पिताजी का बातचीत का लहजा बिल्कुल सामन्ती था।

मैं चुपचाप बैठा हुआ लीपी हुई दीवार को देख रहा था। क्या उत्तर देता उन्हें? यह मेरी समझ में नहीं आ रहा था। कुछ ऐसी घुटन थी कि रोने को जी चाहता था।

धीरे धीरे दिन ढल गया। रात के साये आसमान पर झूमने लगे। पिताजी अपने मित्रों की मंडली के साथ गपशप मार रहे थे। चुनाव चर्चा थी। छोटा ठाकुर विधान सभा के लिए उम्मीदवार खड़ा होना चाहता था।

सुलेमान ने कहा "छोटे ठाकुर तो एकदम बदल गये हैं। आजकल वह किसी से झगड़ा-फसाद नहीं करते। एक वक्त था कि वह बोलते बाद में और मार-पीट करते थे पहले।"

मीतसिंह बैराम की तरफ चला गया। बाद में बातचीत बड़ी देर तक चलती रही। धीरे धीरे सभा भंग हो गयी। पिताजी भी ऊँघने लगे।

'चरण बेटा जा अब सो जा।" अंत में पिताजी ने कहा।

मैं ऊपर की ओर गया। यह मुझे पहले ही बता दिया गया था कि आज मुझे बहू के पास जाकर सोना है। मैं धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ा। दृष्टि दौड़ायी। चारों ओर घोर अन्धेरा था। मैंने ऊपर की मेड़ी में कदम रखा। घुंघरुओं की हल्की सी झंकार हुई मुझे महसूस हुआ कि कोई पाँव समेट कर बैठ गयी है। अन्धेरे में बैठी नागिनी काले नाग सी लग रही थी। मैं उसके पास बैठ गया। कुछ नहीं बोला। वह अपने समस्त अंगों को ओढ़नी में ढके बैठी थी। पत्थर की प्रतिमा की तरह निश्चल। गतिहीन लौ की तरह निस्कम्प। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं उसे क्या कहूँ? मैट्रिक पास किया था। अठारह वर्ष का हो गया था पर यौन-विज्ञान के बारे में मेरा ज्ञान एक तरह से शून्य ही था। मैं उसके पास बैठ गया। कुछ नहीं बोला। रात ढल रही थी। अन्त में उसने कहा 'आप सोयेंगे नहीं?'

"सोता हूँ।" मैं चुपचाप सो गया। वह भी मेरे पास सो गयी। रात गुजर गयी। दिन आया। वह भी चला गया।

दिन बीत गए। बहू एक बार पीहर जाकर वापस आ गयी।

मैंने माँ से कहा "मैं आगे पढ़ना चाहता हूँ। तुम्हारे कारण मेरा एक साल खराब हो गया है।"

"और खेती-बाड़ी कौन करेगा?" माँ ने थोड़ा नाराजगी से कहा।

"पहले पढ़ाई तो पूरी करलूँ।"

'अब मुझे तेरी पढ़ाई-लिखाई की जरूरत नहीं है। जाट के बेटे को खेती ही जोतनी है। अब कन्धे पर हल लेकर तैयार हो जा। जेठ-बैसाख की धूप लगते ही आदमी बन जायेगा।" माँ ने उपदेशक की तरह कहा।

पर मेरा मन नहीं लगा। मैंने पिताजी के सामने यह प्रस्ताव रखा।

सावित्री दूसरी ओर मुँह किए पास बैठी थी। उसने डेढ़ हाथ लम्बा घूँघट निकाल रखा था। वह साग साफ़ कर रही थी। माँ बीच में ही बोल पड़ी "मैं इस मामले में कुछ भी सुनना नहीं चाहूँगी सरवण के बापू! जाट का बेटा जाट बनेगा अपना धर्म छोड़ेगा। पर बेटे सरवण मैं तुझे अपनी आँखों से अब एक पल दूर नहीं कर सकती।"

"लेकिन माँ अधूरी पढ़ाई से क्या लाभ? मैं शहर जाऊँगा ही।" मैंने हठ पकड़ा।

"कैसे जायेगा क्या तुझे यह बहू पसंद नहीं। ऐसी बहू को मैं अकेली नहीं रख सकती। जमाना बुरा है। नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता।" एक गहरी आशंका माँ की आँखों में नाच उठी "समाज-परिवार वाले क्या कहेंगे? नहीं एकदम नहीं।

बहू के कंगन खनक उठे। मेरा ध्यान उस ओर गया। मन में सिहरन सी दौड़ गयी। संगमरमर की प्रतिमा की तरह वह बैठी थी।

माँ ने विनीत स्वर में कहा "बेटा तेरे बापू बूढ़े हो गये हैं। उन से अब खेती का काम-धन्धा ठीक से नहीं सँभलता। फिर इनके अनेक झमेलों की पंचायतें रहती हैं इसलिए मैं तुझे शहर नहीं भेज सकती। फिर तू अपने पिताजी से पूछ ले।" दुबारा पिताजी से पूछने पर उन्होंने भी नाहीं कह दी। शायद बहू के प्रश्न ने उन्हें डरा दिया था। फिर मेरी पूछने की हिम्मत नहीं हुई। उनके गुस्सीले स्वभाव से सभी लोग परि चित थे। क्या मजाल है कि उनको बिना पूछे, घर का एक पत्ता भी हिल जाय। पर कभी-कभी माँ के समक्ष उन्हें झुकते हुए जरूर देखा था।

तब मेरे सम्मुख लौटा का चेहरा नाच उठा। अव्यक्त वेदना की कसक लिए उसका मुख। मैं सीधा उसके घर गया। वह हाथ में मटकी लिये पेड़ को सींच रही थी। मैं उसके पास जाकर खड़ा हो गया। वह अपने आप में बहुत तन्मय थी। वह पेड़ को पानी देती हुई ऐसी लग रही थी जैसे कोई ममता की देवी किसी नन्हें शिशु को पोस रही हो।

"लौटा।" मैंने उसकी तन्मयता को भंग किया।

"क्या है ?"

"तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।

"तू बैठ, मैं अभी आयी।" वह पानी सींचकर पेड़ के आस-पास पड़े पत्तों व कूड़े को उठाने लगी। फिर उसने उसके चारों ओर झाड़ू लगायी। इस काम को पूरा करने में उसे लगभग पन्द्रह-बीस मिनट लगे। फिर वह मेरे पास आयी। लम्बी सांस खींचकर वह मेरे पास इस तरह बैठी जैसे वह कठोर मेहनत करके आयी हो।

"क्या है ? उसने मुझ पर दृष्टि जमाकर कहा।

मैंने उसकी ओर नहीं देखा। अपनी नजर को पेड़ पर जमाकर कहा 'माँ मुझे पढ़ने के लिए शहर नहीं भेजती। यहाँ मेरा मन नहीं लगता, तुम ही जाकर माँ को समझाओ न ?

वह सूखी हँसी हँस पड़ी "मैं इस गाँव की बदनाम औरत हूँ। मेरी भला बात कौन मानेगा शरणए ! फिर तुझे घर पर जो रोका जा रहा है उसका एक बड़ा कारण है कि तेरी बहू जवान है। जवानी में औरत के पाँव सीधे नहीं पड़ते। कब उनके पाँव बरफ की ठंडी और फुलवारी सी सुहानी आग में पड़ जाय और उसका जीवन अकारथ हो जाय। मुझे ही देखो न पगली पति ने की मार-पीट कर उसने मुझे घर से निकाला और छिनाल—बदजात मैं कहलायी। यही जगत का चलन है।"

"लेकिन मैं देखो न वह मुझसे कितनी बड़ी है ? मुझे उसकी शर्म आती है। उससे डर लगता है।"

"फिर भी तू उसके पास रहेगा तो उस पर कुछ अंकुश रहेगा ही। कुटुम्ब-कबीले और जात-बिरादरी वाले भी उसे अनुचित बोल नहीं बोलेंगे। नहीं तो वे सभी तेरे बापू के कानों में अंगारे जैसे शब्द कहेंगे। 'घर में जोड़ी जैसी बहू रख छोड़ी है और बेटे को शहर भेज दिया है। और जमाना भी बड़ा खराब आ गया है। क्या पता कौन उसे बहका ले ?"

"लेकिन मेरी-उसकी जोड़ी कितनी बेमेल है ?"

"इसे भाग्य की बात मान लेनी चाहिए। इसमें उस नारी का क्या

भी कसूर नहीं है। अब तेरा कर्तव्य और धर्म यही है कि उसे खुश रख।
"तेरी बहू हिन्दुओं की बँधी गाय है। पीहर के खूँटे से खुलकर सासरे के खूँटे से आ बँधी है। उसे पीड़ा देना कोई इन्सानियत नहीं, कोई धर्म नहीं।"

मैं वहाँ से उठकर चला आया।

रास्ते में मुझे कुछ समवयस्क लड़के मिले। मुझे तिरछी निगाह से देखकर वे खिलखिलाकर हँस पड़े।

एक ने व्यंग से कहा "ए भी घर म मोड़ो (बोड़ा) है बहू बड़ी छोटो छोरो (लड़का) है।"

मुझे बड़ी पीड़ा हुई। इच्छा हुई पिताजी से जाकर कह दूँ कि मुझे यह बड़ी बहू नहीं चाहिए। मैं यहाँ नहीं रहूँगा मैं बाहर चला जाऊँगा, जरूर जाऊँगा। हीनता की भावना मुझ पर छाने लगी।

मैं इसी गति से घर की ओर चला।

देखा—पिताजी लाल-पीले होकर मुझ पर बरस रहे हैं। किसी ने उनके समक्ष चुगली कर दी कि मैं सोढ़ा से मिलने के लिए जाया करता हूँ। उन्होंने मुझे देखते ही कहा "अरे नालायक तेरी अक्ल घास चरने गयी है जो तू उस करमजली—बदजात के घर जाता है। क्या तुझे मेरे सिर पर धवली पगड़ी नहीं लगती मेरे धोळों (सफेद बालों) में धूल रलवाना चाहता है।"

मैं निरुत्तर रहा।

"यह शहर की हवा का असर है। पाँच-दस क्लास क्या पढ़ाली कम अपने को पण्डित ही समझने लगा? बता क्यों गया था वहाँ?"

मैं फिर भी चुप। मैं केवल उनके लम्बे-लम्बे पाँवों को देखने लगा।

मेरे पिताजी के पाँव औसतन पुरुष-पाँव से बड़े थे। बचपन में उन्हें सभी नानी माँ कहकर चिढ़ाते थे कि पाँव बड़े कपूतों के सिर बड़े सपूतों के। पर मेरे पिताजी ने इस कहावत को असत्य प्रमाणित कर दिया। मतलब उनके पाँव बहुत बड़े थे पर उन्होंने कभी भी आवारागर्दी नहीं की। उन्होंने सदा अपनी मान-मर्यादा रखी और अपनी प्रतिष्ठा में चार

बीच समाये। उन्होंने अपने पैतृक गौरव को परम्परानुसार बनाये रखा सो रखा उसमें बढ़ोतरी भी की।

"क्या मुंह में जबान नहीं है।" पिताजी ने दुबारा पूछा। उनकी आँखों में क्रोध झलक रहा था।

मैं घबरा गया। मेरे मुंह से इतना ही निकल पाया, "यूं ही।"

"यूं ही क्यों? क्या उसके पास कोई शरीफ आदमी जाता है? किसी इज्जत वाले को उससे बातचीत करते देखा है? मेरा हुक्म है कि अब तू वहाँ नहीं जायेगा।" तू नहीं जानता तेरा बड़ा भाई वेणु भी इस कमबख्त से छुप-छुप कर मिलता था। हमने उसे बहुत मना किया था पर इस जादूगरनी का जादू बड़ा कड़ा होता है उतरता नहीं। वेणु ने हमारी जरा भी परवाह नहीं की। चोर की तरह जंगल में खेतों में टीलों में उससे मिलता था। उसका दीवाना हो गया था वह। परिणाम क्या निकला उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। वह तो चला गया पर मुझे जीते जी मार गया। मेरे सारे सपनों को खंड-खंड कर गया। अगर वह जिंदा रहता तो मैं तेरी जरा भी परवाह नहीं करता। अगर तू जन्म भर बाहर मैं पड़ता तो भी मैं तुझे 'ऐं' की 'बैं' नहीं कहता। पर अब स्थिति बदल गयी है। अब तू अकेला है हम गैया का खेवैया।

पिताजी खामोश हो गए थे। शोक विह्वलता से उनके चेहरे पर करुणा का झरना फूट पड़ा। मेरे अन्तस का तार-तार हिल गया और मेरे मुंह से अनायास निकला "अब मैं उससे नहीं मिलूंगा।"

मेरे मुख से इस वाक्य का निकलना था कि पिताजी के चेहरे के भाव एकदम बदल गए। एक ऐसी प्रसन्नता जिसका सम्बन्ध आत्मा की खुशी से ही हो सकता है उनके चेहरे को धूप की तरह खिला गयी। मैं नहीं जानता कि इसके साथ-साथ मैंने क्या-क्या प्रतिज्ञाएँ की क्योंकि उस समय मैं बहुत भावावेग में था। एक विवेकहीन भावुकता मेरे मस्तिष्क में हावी हुई थी जिसका सम्बन्ध अपने प्राण हनन और पराये के मुख से ही होता है।

मुझे सावित्री ने उसी रात बताया "यह आपने बहुत चोखी प्रतिज्ञा की कि मैं बाहर नहीं जाऊँगा। वहाँ जाकर करते भी क्या ? सीत भात से और बैठ भात से ही अच्छा लगता है। इसके साथ मुझे आपसे अलग रहना पसन्द नहीं। मैं आपके साथ ही रहना चाहती हूँ।

दीये की बाती का शरीर धीरे धीरे जल रहा था। मरी हार उस पर थी। उसका बचपन जल चुका था। यौवन आग की तपन से चमक रहा था।

"मैं भी आपके पाँव पड़ती हूँ। सावित्री ने मेरे पाँव पकड़ लिये। एक बिजली सी उस स्पर्श से मेरे अंग प्रत्यङ्ग में दौड़ गयी। उसकी हथेलियाँ रेशम की तरह मुलायम थीं। हथेलियों के दूसरी ओर मेंहदी की फीकी रेखायें अब भी कहीं-कहीं अपना अस्तित्व बता रही थीं। उसकी गोरी-गोरी मृदुल उंगलियाँ अब भी मेरे पाँवों को पकड़े हुए थीं। मैंने धीरे धीरे अपनी दृष्टि को दौड़ाया। आखिर मेरी दृष्टि उसके मुख चन्द्र पर अपलक रूप से स्थिर हो गयी। उसके मधुर लोचनों में प्रणय का उद्दाम था समर्पण की प्यास थी। उसके गुलाबी अधर यौवन की रक्ताभा से प्रदीप्त थे। मेरा अन्तस उत्तेजना और आवेग से भर उठा। कितना अप्रतिम रूप था सावित्री का। मैं उसे खड़ा-खड़ा इस तरह देखता रहा जैसे मैं कोई मिट्टी का पुतला हूँ। तब उसने ओढ़नी के एक झटके से बत्ती को बुझाकर कक्ष में अन्धेरा कर दी। घुप अन्धकार छा गया।

मैंने अनुभव किया—उसकी हथेलियाँ दौड़ती हुई मेरे गालों के पास आकर रुक गयी हैं। उसने मेरे चेहरे पर चुम्बनों की वर्षा कर दी। पता नहीं मुझे उसके इस कृत्य के प्रति एकाएक क्यों घृणा हुई ? मैंने उसकी बाहों से मुक्त होना चाहा पर मुझमें इतनी शक्ति नहीं थी। मैं उसके आलिंगन में तड़पता रहा। धीरे-धीरे मुझमें उत्तेजना जागने लगी। एक ऐसा आनन्द मेरे मन में आया जिससे मैं पूर्व परिचित नहीं था। मैंने भी उसे अपनी बाहों में भर लिया।

x x x

अभागे मनुष्य की परिभाषा इतनी ही हो सकती है कि उसे न चाहते हुए कुछ कर्म करने पड़ते हैं। धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं एक गुलाम हूँ जिसे सावित्री जब चाहे अपनी वासना की तृप्ति का साधन बना सकती है। मुझे उसका प्यार अपने पर बलात्कार सा लगता था।

आज जब मैं इन घटनाओं पर विश्लेषण करने बैठा हूँ तो मुझे लगता है कि उसमें उसका कोई कसूर नहीं था। जो कार्य उसके लिए स्वाभाविक था, वही कार्य मेरे लिए अस्वाभाविक। उम्र का यह भेद। कहाँ पर यौवन प्रफुल्लता और कहाँ मैं टूटा-टूटा-सा फूल। मैं धीरे धीरे उससे दूर रहने लगा। घरवाले इस भेद और नाराजगी से जरा भी परिचित नहीं थे। यद्यपि सावित्री दिन भर घूंघट में लिपटी घर के काम-काज में तन्मय रहती थी। पर मैं इतना काम रहता था कि किसी को किसी के व्यक्तिगत जीवन को देखने-समझने का बहुत ही कम अवसर मिलता था। हालांकि सावित्री नयी बहू थी, इसलिए प्रथा के अनुसार उसे मां विशेष रूप से लाड़-प्यार करती थी उसका विशेष ध्यान रखती थी। परन्तु सावित्री एक परिपक्व युवती भी थी। उसमें नयी दुल्हनों जैसा विदग्धता चापल्य और नाज-नखरे बहुत ही कम थे। शारीरिक पुष्टता के कारण वह मां को इतना सहारा लगाती थी कि मां उसका इस तरह याद करने लगी जैसे भक्त अपने देवता को करता है। बहू का क्षण भर के लिए ओझल होना उसे सहन नहीं था। वह बीनणी बीनणी (बहू) की रट लगाए रहती थी।

इधर मुझे पिताजी ने व्यायाम शुरू करा दिया था। वह मुझे सुबह सुबह उठाकर लंगोटा पहनाते और दंड-बैठक करवाते। मैं जैसे ही कसरत से निवृत्त होता वैसे ही माँ दूध में घी मिलाकर ले आती। घी का दूध मुझसे नहीं पिया जाता था। उसके पाते ही मुझे ऐसा लगता था कि मुझे उल्टी हो जायगी पर पिताजी के भय से मैं उस कड़ुवी दवा की तरह पी जाता था। इसके बाद पिताजी मुझे सोने के लिए कह देते थे। मुझे गहरी नींद आ जाती थी। मैं उस नींद में सपने देखा करता था। सपने भी प्रायः सावित्री के प्रेमाभिनय थे। मुझे उसकी आँखों में एक ऐसी तपिश जलती दिखलायी पड़ती थी जिसको ठंडा करने का साधन मुझे ढूँढे नहीं मिलता था। कभी-कभी वह मेरे पीछे इतने जोर से भागती थी जैसे वह हवा हो। पर मैं भी कम नहीं था। मैं एक पेड़ पर चढ़ जाता था। सावित्री उस पेड़ के पास आती। मैं उदास हो जाता। आकाश की ओर देखता। ईश्वर से प्रार्थना करता कि वह मुझे इससे बचाये। मैं कातर स्वर में यह प्रार्थना करता। वह पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करती। पेड़ इतना लम्बा इतना लम्बा हो जाता कि वह आकाश को छूने लगता और सावित्री एक बिन्दु के सदृश दिखती।

सपने विचित्र होते हैं। सत्य होते हैं। उनकी व्याख्यायें होती हैं। मैं उस समय उनकी व्याख्यायें नहीं कर सकता था किन्तु मुझे इतना जरूर सन्तोष होता था कि मैं सावित्री के हाथ नहीं आता। वह मुझे पकड़ नहीं सकी।

इधर पन्द्रह-बीस दिन से मोहन से नहीं मिला था। मोहन भी इधर नहीं आया थो। मेरा मन उससे मिलने के लिए सहसा तड़पने लगा। एक वही मेरा ऐसा साथिन था जिससे मैं अपने मन की बात कह सकता था। और सभी मेरा मजाक उड़ाया करते थे। गाँव के मित्र तो मुझे चैन भी नहीं लेने देते थे। जब देखो मेरा ब्याह। वह भी चर्चा लेकर बैठ जाते थे और जो भी मन में आता उटपटांग बक देते थे। कोई-कोई मुझे बहुत ही भद्दी बात कह देता था जिससे मैं रुष्ट हो जाता

शायद मनुष्य की परिभाषा इतनी ही हो सकती है कि उसे न चाहते हुए कुछ कर्म करने पड़ते हैं। धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगने लगा कि मैं एक ग्लास हूँ जिसे सावित्री जब चाहे अपनी वासना की तृप्ति का साधन बना सकती है। मुझे उसका प्यार अपने पर बलात्कार सा लगता था।

आज जब मैं उन घटनाओं पर विश्लेषण करने बैठा हूँ तो मुझे लगता है कि उसमें उसका कोई कसूर नहीं था। जो कार्य उसके लिए स्वाभाविक था वही कार्य मेरे लिए अस्वाभाविक। उम्र का यह भेद। कहाँ वह यौवन प्रफुल्लता और कहाँ मैं टूटा-टूटा-सा ठूंठ। मैं धीरे-धीरे उससे दूर रहने लगा। दरअसल इस भेद और नारायणी से बाप भी परिचित नहीं थे। क्योंकि सावित्री दिन भर घूंघट में लिपटी घर के काम-काज में व्यस्त रहती थी। घर में इतना काम रहता था कि किसी को किसी के व्यक्तिगत जीवन को देखने-समझने का बहुत ही कम अवसर मिलता था। हालांकि सावित्री नयी बहू थी इसलिए प्रथा के अनुसार उसे माँ विशेष रूप से लाड़-प्यार करती थी उसका विशेष ध्यान रखती थी। परन्तु सावित्री एक परिपक्व युवती भी थी। उसमें नयी दुल्हनों वाला लिहाज पाबन्द और नाज-नखरे बहुत ही कम थे। शारीरिक पुष्टता के कारण वह माँ को इतना सहारा लगाती थी कि माँ उसका इस तरह प्यार करने लगी जैसे भक्त अपने देवता को करता है। बहू का क्षण भर के लिए ओझल होना उसे सहन नहीं था।'' ''वह बीनणी बीनणी (बहू) की रट लगाए रहती थी।

इधर मुझे पिताजी ने व्यायाम शुरू करा दिया था। वह मुझे सुबह सुबह उठाकर लंगोटा पहनाते और दंड-बैठक करवाते। मैं जैसे ही कसरत से निवृत्त होता वैसे ही दूध-दूध में घी मिलाकर ले आते। घी का दूध मुझसे नहीं पिया जाता था। उसके पाते ही मुझे ऐसा लगता था कि मुझे उल्टी हो जायेगी पर पिताजी के भय से मैं उस बहुरोगी दवा की तरह पी लेता था। इसके बाद पिताजी मुझे सोने के लिए कह देते थे। मुझे गहरी नींद आ जाती थी। मैं उस नींद में सपने देखा करता था। सपने भी प्रायः डाकिनी के प्रभावित थे। मुझे उसकी आँखों में एक ऐसी शक्ति झलकती दिखलायी पड़ती थी जिसको ठीक करने का साधन मुझे ढूँढे नहीं मिलता था। कभी-कभी वह मेरे पीछे इतने जोर से भागती थी जैसे वह हवा हो। पर मैं भी कम नहीं था। मैं एक पेड़ पर चढ़ जाता था। डाकिनी उस पेड़ के पास आती। मैं उदास हो जाता। आकाश की ओर देखता। ईश्वर से प्रार्थना करता कि वह मुझे इससे बचाये। मैं कातर स्वर में यह प्रार्थना करता। वह पेड़ पर चढ़ने का प्रयत्न करती। पेड़ इतना लम्बा इतना लम्बा हो जाता कि वह आकाश को छूने लगता और डाकिनी एक बिन्दु के सदृश दिखती।

सपने विचित्र होते हैं। सत्य होते हैं। उनकी व्याख्यायें होती हैं। मैं उस समय उनकी व्याख्यायें नहीं कर सकता था किन्तु मुझे इतना अवश्य सन्तोष होता था कि मैं डाकिनी के हाथ नहीं आता। वह मुझे पकड़ नहीं सकी।

इधर पन्द्रह-बीस दिन से कोठा मैं नहीं गया था। कोठा भी इधर नहीं आयी थी। मेरा मन उससे मिलने के लिए सहसा तड़पने लगा। पर वहाँ मेरा ऐसा साथी न था जिससे मैं अपने मन की बात कह सकता था। फिर सभी मेरा मज़ाक उड़ाया करते थे। गाँव के मित्र तो मुझे चैन भी नहीं लेने देते थे। जब उनको मेरी बातें वह की चर्चा लेकर चढ़ जाते थे और जो भी मन में आता अटपटांग बक देते थे। कोई-कोई मुझे यहाँ तक ही नहीं बात कह देता था जिससे मैं क्रुद्ध हो जाता

था और मेरा मूड दिन भर खराब रहता था। तब मैं अकेला खेतों की ओर चला जाता था। धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगने लगा कि मुझे किसी से नहीं मिलना चाहिए। मुझे एकांत में अपूर्व परितृप्ति का अनुभव होता था। मेरी अन्तर्मुखता दिन प्रति दिन बढ़ रही थी।

उस दिन पूनम की रात थी। मैं पिताजी के पाँव दबा रहा था। ग्यारह बज रहे थे। पिताजी ने मुझे सोने की आज्ञा दे दी थी। इधर मैंने दण्ड-बैठक बढ़ा दी थी और पहलवानी मेरे शरीर पर अपना प्रभाव भी दिखा रही थी। पिताजी सुबह हाथ में पतली बेंत [जो मूँदी नामक पेड़ की एक पतली टहनी ही होती थी।] लेकर बैठ जाते थे और गिन-गिन कर मुझसे बैठकें निकलवाते थे। अगर मैं उनके कहे मुताबिक बैठकें नहीं निकालता तो उनकी बेंत हवा में सू-सू की ध्वनि करने लगती थी। प्राय मुझे एक दौर में दो सौ बैठक और सौ दंड निकालने पड़ते थे। मेरा शरीर पसीने से भीग जाता था। इतना थक जाता था कि मेरा मन भाग जाने को होता था। तब पिताजी अपनी बड़ी मूँछों पर ताव देकर कहते "बच्चू! कसरत करना लोहे के चने चबाना है।" और जब मैं सोने जाता तब वह दार्शनिक की भाँति अपने नेत्रों को आधा बन्द करके कहते "कसरत के साथ लंगोट भी सच्चा रहना चाहिए।" उनकी इस बात से मुझे झुँझलाहट होती क्योंकि मौका मिलते ही सावित्री मुझे पकड़ लेती थी और" । मैं उन पर खीझ जाता था। झुँझलाहट के मारे मुझे अपने बाल नोचने की इच्छा होती और मैं मन ही मन कहता "ब्रह्मचर्य कैसे रहूँ वह तो मेरी तिनहिमाति थोड़ी छैसी है!" पर मैं अपने मन के विचारों को शब्दों का रूप नहीं दे सकता था। पिताजी के समक्ष इस तरह की बात चीत करते हुए मुझे शर्म आती थी। यह धृष्टता भी समझी जाती थी। भय और आतंक के कारण मन रोमांचित हो जाता था। मैं मन ही-मन घुटता रहता था। एक घटना याद आती—

एक दिन पिताजी के साथ मैं शहर गया था। वहाँ मुझे सड़क पर एक पेम्पलेट मिला। उसमें एक दुर्बल व्यक्ति के कई चित्र दिए हुए थे। अंतिम

दिन में वह लम्बा तगड़ा पहलवान हो गया था। मैं उसे मंत्र मुग्ध सा देखता रहा। उसमें लिखा था—आप भी शेर की ताकत पाइये।

विस्तृत सूचना इस तरह थी —रईस महमद-बचपन में दुबला-पतला और कमजोर था। जवानी में आते-आते उसकी शादी हो गयी। शादी के बाद उसकी बीबी उससे नाराज रहती थी। बात-बात में झगड़ा हो जाता था। एक दिन वह मुझसे मिला। अपने दिल के हाल कहे। मेरा मन पसीज गया। मैंने अपने उस्ताद बजहुल अली के हुक्म से "आबे हयात' नामक दवा दी। चन्द दिनों में महमद का शरीर इतना मजबूत हो गया कि वह एक मुक्के से पक्की ईंट तोड़ने लगा। इस नौजवानी का असर यह हुआ कि उसकी बीबी जो उसे बात-बात में झगड़ा फसाद करती थी उसके तलुवे सहलाने लगी। आप भी तीन शीशी का पूरा कोर्स लीजिये। बूढ़े हो तो जवान बनिए और जवान हो तो नौजवान बनिए।

मैं भावाभिभूत सा उसे देखता रहा। अप्रत्याशित मेरे मन में आया कि मैं भी पिताजी को कहकर वे तीन शीशियाँ खरीद लूं। आखिर मैंने अखबार के पश्चिमी कोने में जहाँ भीड़ भाग भाग की थी वह पृष्ठ पिताजी को सौंप दिया। पिताजी बहुत कम पढ़े लिखे थे। उनके लिए काला अक्षर भैंस के बराबर तो नहीं था पर संयुक्त अक्षर उनके लिए पूरे सर दर्द थे। अधिकतर वह पढ़ने से जी ही चुराते थे। जब मैंने वह पत्र उनके सम्मुख दिया तब उन्होंने मुझे सुनाने के लिए कहा। मैं बड़ा धर्म संकट में पड़ा। संकोच से मेरी कनपटियाँ आरक्त हो गयी। मैंने सहमते-सहमते उस विज्ञापन को पढ़ा। उसे सुनते ही वह भड़क कर बोले 'तुममें अकल नाम की कोई चीज नहीं है। अरे मेरे बेटे यह सब ठग विद्या है। लोगों को उल्लू बनाने के तरीके हैं। शरीर को मोटा बनाना है तो लंगोट को सख्त रखो। इस जगत की सबसे बड़ी शक्ति ब्रह्मचर्य में ही है। अंग्रेजी पढ़ कर भी इन धन प्रपंचों को नहीं जानते। छि-छि।"

मुझे बड़ी लज्जा आयी और मैंने मन-ही-मन सोचा कि मैं सम्पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य व्रत रखूंगा। पर कैसे रखूंगा? सावित्री मुझे अपनी बुआजी

मैं इस तरह बांधती थी जिस तरह विशाल अजगर इन्सान को अपने में समेटता है। तब मैं निसहाय सा पड़ जाता था। मुझे लगता कि मैं एक निरीह निर्बल पशु हूं और मेरी पत्नी वासना की मूर्ति।'

पिताजी ने मुझे सो जाने का हुक्म दे दिया था। उनका हुक्का ठण्डा पड़ गया था। उनके साथी-संगी भी ऊंघने लगे थे। मैं फिर भी उनके पांव दबाए जा रहा था। मेरी इच्छा वहां से जाने की नहीं हो रही थी। मैं जितनी देर हो सके उतनी देर करके सोने जाना चाहता था। मैं यह चाहता था कि सावित्री सो जाये तो मैं जाऊं। पर सावित्री को नींद कहां? वह मुझे अपनी बांहों में लपेट कर सोती थी। अपने अधरों को मेरे अधरों पर रखकर सांस लेती थी। मेरा सांस घुटता था। मैं अपने को मुक्त करने का प्रयास करता था। वह झुंझला उठती थी। गुस्सा हो जाती थी। बड़बड़ाने लगती थी। मेरे पौरुष को लांछित करती थी। फिर वह ईश्वर को कोसने लगती थी कि उसने मुझे ऐसा खसम देकर मेरा जन्म ही खराब कर दिया।

पिताजी ने दूध सी धोई चांदनी पर नजर दौड़ा कर एक बार मुझे फिर कहा 'जाता क्यों नहीं? सवेर जल्दी उठना है।'

मैं चला आया।

उज्ज्वल चांदनी नील आकाश में अपने पूरे यौवन से छायी हुई थी। दूर-दूर तक जैसे रेत के टीले उस चांदनी में स्वर्ण धूलि की तरह चमक-दमक रहे थे। चारों ओर ऐसा सन्नाटा था जैसे यहां कोई रहता ही नहीं है। यह सारा गांव निर्जन है मौन-निस्तब्ध है।

मैं सीढ़ी के नीचे की छत पर खड़ा था। दूसरी ओर सावित्री हाथ में कोई पुस्तक लिये पढ़ रही थी। वह थोड़ा-बहुत पढ़ना लिखना जानती थी। मैंने उसके समीप जाकर कहा "तू अभी तक सोयी नहीं। मालूम है, कितनी रात बीत चुकी है?"

"नींद नहीं आती।" उसने एक मादक अंगड़ाई ली।

मैंने उसके हाथ से पुस्तक छीन ली। देखा 'किस्सा तोता मैना' है।

यह पुस्तक मेरे पिताजी भी पढ़ते थे । चाचा भी पढ़ते थे और चचेरे भाई भी । पर मैं जानता था कि यह पुस्तक निम्न प्रेम को जगाने वाली है । आदमी में उत्तेजना भरने वाली है । मैंने भी इसे दस-बारह वर्ष की उम्र में छुप-छुपकर पढ़ा था । तब मुझे बड़ी रोचक लगी थी । सभी इसकी प्रशंसा करते थे । पर इस समय उस पुस्तक को सावित्री के हाथ में देखकर उसे डाँटने की तब इच्छा प्रबल हो गयी । सचमुच प्राणी जिसे घृणा करता है उसके प्रति वह अनेक तरीकों से रोष प्रकट कर सकता है । विशेषतः वह शिष्टता और बड़प्पन की आड़ लेकर अपने कुत्सित और हीन व्यक्तित्व को दूसरों पर आरोपित करता है । इस समय मैंने उसे डाँटने की योजना तुरन्त बनाली । उस पुस्तक को छीनना चाहा पर वह मेरे हाथ नहीं लगी । उसने झट से उसे अपने पाँव के नीचे छुपा लिया ।

मैंने क्रोधित स्वर में कहा "यह क्या गंदी-गंदी किताबें पढ़ती हो ? शर्म नहीं आती ।"

मेरे रोष का उस पर विपरीत असर हुआ । उसने अंगड़ाई लेकर मुझे मादक कटाक्ष किया और चौकना में ही उसने पढ़ना शुरू किया— तोता बोला कि हे मैना ! तब साहूकारजादी कहने लगी कि हे प्यारे ! मैं तो दिलोजान से तेरी तावेदार हो चुकी हूँ और यह दोहा कहा—

इस फुलवारी का तुही प्यारे सींचनहार ।
क्या ताकत है और की देखे मन निहार ॥
तुम जैसा हम आदमी रची आप करतार ।
अब बन्दी को जानिए अपनी तावेदार ॥

मुझे उस पर गुस्सा आया । मैं उसे अनाप-शनाप बकता रहा ।

उसने किताब को अपने आप बन्द कर दिया । वह इस तरह चित लेटी जिससे उसके अंग-अंग का उभार निखर कर आ गया । मेरे हृदय पर आघात सा लगा । ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मुझसे कोई अपराध हो गया हो । मैंने सहमते हुए देखा एक अपूर्व यौवना निढाल सी पड़ी है

मैंने उसे बहुत देर तक फुसलाने की चेष्टा की पर वह टस से मस नहीं हुई। अन्त में मैंने उसके मुखड़े पर चुम्बनों की वर्षा कर दी पर उसके शरीर और मन में किसी तरह की प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह अनुभूतिहीन प्रस्तर-मूर्ति की तरह पड़ी रही। आखिर मैं उसे मनाते-मनाते थक गया। मैं नाराज होकर उठ गया "अगर तू नहीं मानती तो मैं चला। अब मैं कल से खेत में ही सोना शुरू कर दूँगा। आखिर मैंने किसी का घर तो नहीं जला दिया है? 'परत्व' की भी एक सीमा होती है। क्या तू मेरी नाक रगड़वाना चाहती है—जमीन पर?"

मैं यह कह कर चलने लगा कि उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। ऐसा झटका दिया कि मैं उसकी गोद में गिर पड़ा। गिरने की गति ऐसी थी कि मैं कोई नन्हा बालक होऊँ। सच अपनी दुर्बलता की कहानी कहते मुझे शर्म जरूर आती है पर कहे बिना भाव रहा भी नहीं जाता है। दुख-सुख के क्षणों को दोहराने में आत्मिक सन्तोष का अनुभव होता है। दुख हल्का हो जाता है। मैं उसकी ओर देखने लगा। वह भी मुझे अपलक देखती रही। मैं उसकी मुद्रा से सिहर उठा। उसकी आँखों में ठीक वैसे ही भाव थे जैसे यशोदा की गोद में कन्हैया वाले कलेण्डर में यशोदा के लोचनों में थे। वे भाव मेरे लिए असह्य थे। मैंने तुरन्त उन्हें मृत्यु दे दी। मैं एक पागल की तरह उनके गले से लिपट गया। मेरी वासना होम की अग्नि की तरह प्रज्वलित होने लगी। पर वह असीम अवसाद में किसी माँस के लोथड़े की तरह पड़ी रही। मुझे लगने लगा—मैं अत्यन्त निरीह और निर्बल हूँ इसके सम्मुख। और मेरा मन अपनी स्थिति के प्रति घृणा से भर उठा। वही मर्मान्तक पीड़ा भय और हीनता।

सुबह मेरा अंग-अंग थकान से टूट रहा था। रात को बड़ी देर तक हम नहीं सोये थे। सावित्री मुझे बार-बार कह रही थी कि आप मुझे छोड़कर कहीं भी न जावें। मैंने उसे आश्वासन दिया कि मैं कहीं नहीं जाऊँगा। ऐसी विनती वह सदा करती थी। जब किसी रात पर मेरा

वियोग सहा नहीं था। सो बातचीत में रात काफी ढल गयी। सावित्री सारा राग-द्वेष भूल गयी थी। मुझे गहरी नींद आ गयी। सदा की तरह उसने मुझे नहीं जगाया। शायद वह समझ गयी थी कि मैं थक गया हूँ। वह उठकर गायों का काम करने लग गयी। सबसे पहले वह सारी जगह झाड़ बुहारती थी। फिर वह गायों को दाना-पानी देती थी और इधर वह माँ को गायों को दुहने में भी सहयोग करने लगी थी।

पिताजी मुझे जोर-जोर से पुकार रहे थे। उनकी बुलन्द आवाज ने मेरे कानों के पर्दे हिला दिए, पर मैं जानबूझ कर कानों में तेल डाले पड़ा रहा। पिताजी बिगड़ पड़े। उन्होंने कड़ककर कहा "सरवण की माँ जरा देख तो तेरा लाड़ला क्या कर रहा है?"

माँ ऊपर आयी। उसने मुझे जगाया। मैंने बड़े भोलेपन से कहा माँ आज मेरे सिर में बड़ा दर्द है। मुझे सोने दे।

माँ का दिल माँ का दिल ही होता है। वह नीचे वापस चली गयी। उसने घूँघट को उठाकर कहा 'सरवण का माथा दुखता है, वह आज कसरत-वसरत नहीं करेगा।"

पिताजी बिगड़ पड़े। पास में पड़े लोटे को फेंक कर बोले "मैं इसके लिए घी-दूध की नदियाँ बहा रहा हूँ और इसके सिर में दर्द हो रहा है। सिर का दर्द तो आज तक मेरे भी नहीं हुआ। जा उसे उठाकर ले आ।'

"लेकिन ।"

"लेकिन-वेकिन मैं नहीं जानता। जा दारा बना है मानों रुई का फून है। थोड़ी सी आँच लगी कि झुलस गया।" पिताजी बड़बड़ाते रहे। मुझे चुपचाप लंगोटा लेकर नीचे उतरना पड़ा। मेरी आँखें झुकी हुई थीं।

मुझे पिताजी ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। वे डाक्टर की तरह मेरा निरीक्षण कर रहे थे। उनकी आकृति गम्भीर थी। कभी उनकी दृष्टि मेरे दाँतों की ओर जाती और कभी मुख की ओर। तब

वह हल्के कम्प से हुंकार कर बोले "चेहरे पर पहलवानी का कोई असर नहीं है। सरवण की माँ आज से तेरा सपूत मेरे पास ही सोएगा।" और उन्होंने मुझे लंगोटा बाँधने का हुक्म दे दिया।

दिन में मैं कभी भी खुले दिल से सावित्री से भेंट नहीं कर सकता था। इसे हमारे परिवारों में अच्छा भी नहीं समझते थे। दूसरा घर, इस तरह बना हुआ था कि मौका भी नहीं मिलता था। किन्तु उस दिन दोपहर को जब मैं खेत से लौटकर खाट पर लेटा ही था कि मुझे माँ का तेज स्वर सुनाई पड़ा वह पिताजी से कह रही थी "आप कभी-कभी बहुत ही अनूठी (अनुचित) बात मुख से निकाल देते हैं।

"कौन-सी बात निकाल दी भाग्यवान ?" पिताजी ने पूछा।

आपने कैसे कह दिया कि सरवण मेरे पास सोएगा। क्या मेरी बहू अकेली सोएगी ?

'किसने कहा कि बहू अकेली सोएगी। सरवण मेरे पास सोएगा और बहू तेरे पास सोएगी।"

"बस हो गई। आपको बैठे-बिठाए क्या सूझ पड़ता है कि कुछ समझ में नहीं आता ? दोनों मोट्यार (जवान) हैं यह भी आप जानते हैं ?"

'खूब जानता हूँ सरवण की माँ! यह भी जानता हूँ कि तेरी बहू तेरे बेटे से चार साल बड़ी है दोहरे बदन की है इसलिए मैं तेरे बेटे को अपने पास सुला रहा हूँ। चार महीने लंगोट सच्चा रख लिया तो जीवन भर मौज करेगा।

'मुझे यह अच्छा नहीं लगता।

"औरतों में ठीक-बेठीक की पहचान ही कहाँ होती है। जाओ अपना काम करो।" उन्होंने कठोर स्वर में हुक्म दिया।

माँ उलाहना लेकर बात अच्छा करने भीतर चली गई। सावित्री पिछवाड़े में गोबर थाप रही थी। उसे अभी तक इस चर्चा का पता नहीं था। वह सदा की तरह मन में लीन थी। गोबर थापने की थप्-थपा-थप्

एक संगीतमय ध्वनि के रूप में मेरे कर्ण-कुहरों में पड़ रही थी। वह मध्यम स्वर में गुनगुना रही थी। मैंने अपने कान लगाये कि वह क्या गुनगुना रही है पर स्वर इतना अस्पष्ट था कि मेरी लाख कोशिश के बावजूद मैं उस गुनगुनाने के मर्म को नहीं जान पाया। यह जरूर था कि वह अपने ध्यान में तन्मय है। संगीत स्वर को मधुर बनाता है। खेतों में 'हैया' की धुन धरती को जोतने में बहुत ही सहायक होती है।

सदा की तरह उस रात भी पिताजी की सभा भंग हो गई। मैं उन्हीं के पास खाली खाट पर सो गया। शरद चाँद की रात थी। चाँद हँस रहा था। चाँदनी संसार को अपने यौवन से आच्छन्न किए हुए थी। जब सब लोग सो गए तो सावित्री आई। उस रात मैंने पहली बार जाना कि सावित्री बहुत चतुर है। उसने अपने पाँवों की पैजनियाँ खोल दी थीं। वह धीरे-धीरे मेरे पास आई। मुझे उठाया। मैंने हड़बड़ाकर आँखें खोलीं। उसने मुझे चुप होने के लिए संकेत किया।

सीढ़ियों के बीच ही मैंने उसे समझाया कि पिताजी ने मुझे तेरे पास सोने के लिए मना कर दिया है।"

"क्यों?

"क्योंकि वह मुझे ब्रह्मचारी रखना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि पहलवानी के साथ ब्रह्मचर्य-व्रत अत्यन्त आवश्यक है।"

"क्या वह आपको कुश्ती का धंधा करायेंगे?"

"नहीं तो।"

"फिर?"

"वह कहते हैं कि तू मुझसे बड़ी और तगड़ी है। इसलिए वह मुझे हृष्ट-पुष्ट बनाना चाहते हैं ताकि तेरी मेरी जोड़ी अच्छी लगे।"

वह मुझे हाथ पकड़कर ऊपर ले गई। निर्मल चाँदनी में मैंने उसकी करुणा से सजल आँखों को देखा। वह बहुत उदास थी। उसने मेरे हाथ को अपने दोनों हाथों में पकड़ा। मेरे हाथ पर उसके अधर-स्पर्श करते

हुए मचल रहे थे। वह विगलित-स्वर में बोली "नहीं नहीं यह चु
है मैं आपसे अलग नहीं रह सकती आप भरोसा रखें मैं अपनी बा
पर पहाड़ रख दूँगी पर इज्जत के बाहर का काम नहीं करूँगी। मे
नाम सावित्री है मैं अपने नाम पर कभी भी कलंक नहीं आने दूँगी।"

उसकी आँखों से मोतियों की तरह अश्रु गिर रहे थे। मैंने उसे बा
लिया। उसे अपने सीने से लगा लिया पर बात उल्टी ही हुई।
मुझमें कमी थी इसलिए उसकी छाती पर मेरा सिर था तथा
उसका हाथ मेरे सिर पर था। बड़ी भावना जिसकी मर्मान्तक पी
बिच्छू के डंक की तरह थी जिसकी लहरें मेरे प्रत्येक अंग-प्रत्यंग
चलती थी जाग्रत हो गयी। मैं तिलमिला हो गया। वह मु
पत्नी की तरह प्यार कर रही थी पर मुझे लगा कि वह मुझे एक ब
की तरह दुलार रही है। मैं उससे हल्के झटके के साथ अलग
गया। हीनता में धस गया। यह पीड़ित विडम्बना है। मुझे पहलवा
बनना चाहिए। बिना अपने आपको पहलवान बनाये इस पीड़ा
छुटकारा नहीं। मुझे लम्बा-तगड़ा दोनों बनना ही पड़ेगा।

मैं सँभल कर बोला "नहीं ऐसा नहीं हो सकता। पिताजी की बा
को न मानने का मतलब है कि उन्हें दुखी करना। घर की शान्ति
तोड़ना। तू धीरज रख। यह भाग्य का काम है। कहीं मुझे भी देख
मेरा सारा भविष्य बरबाद हो गया। पढ़ाई-लिखाई समाप्त। आमो
प्रमोद समाप्त। इस पर भी मैं दुख नहीं करता। आदमी जो चाहता
वह पूरा नहीं होता। यह कुदरत का खेल है। विधि का विधान है।
अंत में मैं बहुत ही उपदेशात्मक ढंग से बोलने लगा।

फिर मैंने उसकी ओर देखा। अपार अवसाद उसके आनन प
क्रीडा कर रहा था। मैं भारी मन लिये धीरे-धीरे चला आया औ
आकर सो गया।

× × ×

वर्षा हो गयी थी। गाँवों में जीवन महमहा उठा था। खेतों में बैलों की घंटियाँ बजने लगी थीं। मैं सुबह-सुबह पिताजी के साथ खेत चला जाता था। धरती में बीज डाल दिए गये थे। पिताजी ने खेतों के बीच एक झोंपड़ी का निर्माण कर दिया था। तीन माह की जगह साढ़े तीन माह बीत गए थे। मेरा कद तो नहीं बढ़ा पर शरीर के अंगों में आमूल चूल परिवर्तन आ गया। स्पष्ट शब्दों में कहूँ—मेरी सेहत पहले से दुगनी अच्छी हो गयी और मेरे संगी-साथी मुझसे खौफ खाने लगे। उन पर मेरी ताकत का आतंक छाने लगा। उनकी मजाकें बन्द हो गयीं। वे सब मेरी इज्जत करने लगे—भय से।

एक बार बिसनू ने मुझसे यूँ ही मेरी बीवी को लेकर मजाक कर लिया था। फिर क्या था? मैंने उसको अपने दोनों हाथों पर उठाया और उसे इस तरह उछाला कि जैसे वह छोटा-सा मिट्टी का पुतला हो। उसकी कमर और पीठ में चोट आयी। उसका मुँह रोना-रोना सा हो गया। वह कई मास तक बोल नहीं पाया। करुणा से मेरी ओर देखता रहा। मैंने अकड़कर कहा — अब कभी भी बेहूदगी की तो हड्डी-पसली एक कर दूँगा। अब मैं पहले वाला सींकिया सरजू नहीं रहा समझे।"

मैं इतना कहकर चला आया। इस घटना की प्रतिक्रिया मेरे हक में बड़ी अच्छी हुई। बिसनू अपने को तीसमार खाँ समझता था और मैंने पलक झपकते उसका तीसमारखाँपन उतार दिया। सारी अकड़ भुला दी। मुझे इसका बड़ा संतोष था और मैं दूने वेग से दंड-बैठक करने लगा। जैसे मुझे अपने सुख के बीज-मंत्र का पता लग गया हो जैसे

मैंने इस पहलवानी के रूप में कोई कोहनूर-हीरा पा लिया हो। मैंने अपने मन को और कड़ा व प्रतिज्ञाबद्ध किया। मैं सावित्री की अब उपेक्षा करने लगा। उससे खूब कतराता था। कभी-कभी वह घर के कोने तिकोने में मेरा हाथ पकड़ लेती थी पर मैं उसे कुछ भी प्रोत्साहन नहीं देता था और जब वह मेरे समीप आती तो मैं झट से यह कह देता "माँ आ रही है या पिताजी देख रहे हैं।

पिताजी और माँ के देखने व आगमन की सूचना पाकर वह इस तरह भाग जाती थी जिस तरह अन्धेर के साथ छाया।

उस दिन दोपहर को मैं खेत से लौट रहा था। सरवर की पाल से नीचे उतरती हुई मुझे लीला मिल गयी थी। लीला का शरीर दिन प्रति दिन मोमबत्ती की तरह गल रहा था।|उसकी आँखों में धार्मिक मनुष्य जैसी अलौकिक दीप्ति और ओज झलकने लगा था। मुख प्रभात का जैसा भक्तिनों का होता है। उसने मुझे देखते ही अपने सिर की मटकी उतारी। उसे पीपल की छैया तले रखती हुई बोली "तुमसे एक बात करना चाहती हूँ भैया। |

मैं लीला से इधर नहीं मिला था। मिलने की चेष्टा भी नहीं की। कभी-कभी उसकी याद आयी तो मन को दूसरे कामों में बहलाकर भुला दिया। मैं नहीं चाहता था कि पिताजी इसको लेकर मुझ पर बिगड़े। इसलिए कभी-कभी मैं लीला को देखकर रास्ता भी काट जाता था। पर आज मैं लीला से नहीं कतरा सका। यह भी बात थी कि चारों ओर एकान्त था। कोई भी प्राणी तत्काल आस-पास दिखलायी नहीं पड़ रहा था।

मैं उसके पास बैठ गया "क्या बात करना चाहती हो।" और मैं प्रश्नवाचक दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

"कल सावित्री मिली थी। बेचारी रो रही थी। सरवस यह जुल्म क्यों ? आखिर यह पहलवानी तुम्हें क्या लाभ देगी ?

"उसका लाभ तुम्हें नहीं सूझ सकता। मैंने एक बार अपने हर्ष

को देखा ताकि उसका ध्यान भी उस ओर आकर्षित हो कि मैं पहले से कितना दुबला लगता हूँ ? उसने मेरे शरीर की ओर नहीं देखा। वह अपनी दृष्टि को सूनी पगडंडी पर जमाती हुई बोली "यह अन्तर तुम्हें लगता होगा। मुझे तो इससे भी भयानक अन्तर दिखलायी पड़ रहा है। मुझे डरलग वह अच्छे मकान की है इसलिए वह अपनी छाती पर हथौड़े जम रही है वर्ना तीसरे दिन वह घर से निकल जाती। इसलिए तुमसे हाथ जोड़कर विनती है कि तू पहलवानी मन ही मन कर पर उस गरीब को दुख न दे। जरा सोच कौन औरत तीन-तीन चार-चार माह अपने पति से बिना बात रहेगी ? कम-से-कम उससे दो-चार घड़ी प्यार से बातचीत ही कर लिया कर। वह मुझसे रोकर कहने लगी बहन ! वह मेरे संग नहीं सोते तो न सोये। अपने पिताजी का ध्यान आये। यद्यपि मैं घर में आग लगाना नहीं चाहती। घर की शान्ति भंग करना नहीं चाहती। नारी पत्थर की शिला है। सहना उसका धर्म है। किन्तु वह मुझसे बोले तक नहीं। मुझसे दूर-दूर भागे। ऐसा क्यों ? ऐसा मैंने कौन-सा कसूर किया ? आखिर मैं भी औरत हूँ। और इस 'औरत हूँ' जैसे शब्दों में व्यथा का अथाह सागर लहरा उठा।

"मैं क्या करूँ ? क्या तू चाहती है कि मैं बापू को धोखा दे दूँ ?" मैंने भौजी की बात को काटकर कहा।

"पर तूने अपने बापू की यह अनूठी बात मानी ही क्यों ? भगवान ऐसा न करें पर फिर भी कहीं तेरी बहू का पाँव घर से बाहर निकल गया तो बदनामी कितनी होगी ? लोग तेरे सिर पर धूल डालेंगे और कहेंगे—पट्ठा पहलवानी करता फिरता है और बहू जगह जगह मुँह मारती फिरती है। मैं सच कहती हूँ यह पीड़ा और भी भयानक होगी। उसे कोई भी सह नहीं सकेगा।" वह कुछ क्षण तक मौन रही। उसके चेहरे पर अथाह व्यथा छा गयी। एक असह्य वेदना ने उस दमकते भोली दाम्पत्य की भाल में मरघटी का वास करा दिया। वह आर्द्र स्वर में अपने आपसे बोली "औरत को कोई नहीं

भाग जाता। लोग उसकी एक भूल से सम्पूर्ण जीवन को लांछित करते हैं मूल्यांकन करते हैं। यह उचित नहीं। दरअसल 'वह एक भूला पखेरू है जो पिंजरे में प्रसन्न रहता है पर जब उसे पिंजरे में बरबस ही प्यार तक पाया जाता है तब वह मुक्ति का आह्वान करता है और अवसर मिलते ही कभी-कभी वह उड़ भी जाता है—नील गगन में। फिर उसका कोई ठिकाना नहीं- कोई मंजिल नहीं कोई ठहराव नहीं। वह उड़ता रहता है जहाँ थकता है वहीं बैठ जाता है, जहाँ बैठता है वहीं लोग वापस उसे पिंजरे में बन्द करते हैं तड़पाते हैं छोड़ देते हैं उड़ा देते हैं और पखेरू एक दिन टूट जाता है। सरला! उसके दर्द को किसी ने भी नहीं जाना। उसके मन-सरोवर की किसी ने भी थाह नहीं ली। इसलिए मेरी तुमसे विनती है कि सत्यानाशी—सब भाव इसके पहले तू अपने घर को सम्भाल ले।

उसकी हर बात का मुझ पर गहरा प्रभाव हो रहा था। उसके शब्दों का तरल मेरे हृदय में उतर रहा था। मैंने असहाय की तरह कहा 'मेरी लाचारी तुम नहीं जानतीं। लीला! मैं एक दुर्बल प्राणी हूँ।"

"इस तरह हिम्मत हारने से काम नहीं चलेगा। जो सही है उसके लिए संघर्ष जरूरी है। तेरा बाप तुझ पर अन्याय करता है तेरी बहू पर अत्याचार करता है। तू लाख सहनशाली बन, पर चार साल का अन्तर नहीं मिट सकता। वह अमिट दाग है, उसको केवल तेरा असीम प्यार ही पाट सकता है। रोना और भगवान उसकी दूरी ही बढ़ायेगा।"

वह उठी और चल पड़ी। मैं कुछ देर तक खड़ा रहा फिर उसके पास जल्दी से गया और बोला 'मैं तुम्हारी बात पर अमल करने की कोशिश करूँगा। किन्तु ! मैंने बात को बदलकर कहा "लीला! तुम इतने पानी का क्या करती हो! इस दोपहर में इस तरह घर ? मुझे इससे डर लगता है। भैया इस में'।

'मैंने एक पेड़ लगाया है न उरे भैया की याद में। अपनी देवू को वापस जिन्दा करने के लिए। वह पेड़ अब मेरे घर के आगे थोड़े दिनों

में लहलहाने लगेगा। प्रभु ने तेरे मैना को मुझसे छीन लिया था और प्रभु ने ही उसे वापस मुझे सौंप दिया है वर्ना इतनी जल्दी यह पेड़ नहीं लगता। देखना, अगले साल इसमें फूल लगेंगे। उसकी सुगन्ध से सारा मौहल्ला महक उठेगा। पर मैं इसमें लगा एक फूल भी किसी को नहीं दूँगी सारे के सारे प्रभु के चरणों में भेंट कर दूँगी।"

उसका गला भर आया। वह चली गयी। मैंने मन ही मन कहा "बावरी कहीं की।"

उसके चलने के बाद मैं पगडंडी पर सोचता हुआ चला जा रहा था। रास्ते में कई परिचित मिले। उन्होंने मुझसे राम राम की। मैंने उन्हें जवाब भी दिए। लेकिन मैंने किसी को ध्यानपूर्वक नहीं देखा। मेरे मन में सावित्री को लेकर उधेड़बुन चल रही थी। आखिर उसने घर का भेद तीसरे कान में क्यों डाला? इतना दुख-संताप था तो मुझसे कहती। कभी-कभी मेरा मन उसके प्रति करुणा से भारी हो जाता था। इधर उसके पारिजात मुख को देखकर और उधर अपने संयम देखकर मुझे लगता था कि मैं पहलवानी नहीं कर रहा हूँ बल्कि अपनी दुर्बलता को छुपाने के लिए मैंने पलायन का एक अच्छा रास्ता ढूँढ लिया है। वर्ना मैं किसी भी तरह सावित्री से मिल सकता हूँ। पिताजी तो उसके लिए बहाना मात्र है। वस्तुतः मैं स्वयं उससे दूर भागना चाहता हूँ। आधी रात को मैं उससे बातचीत कर सकता हूँ। गोबर वाले पिछवाड़े उससे न मिल सकता हूँ।

नहीं। कदापि नहीं। किन्तु कहीं उसने घर न बाहर कदम रख दिया तो? किसी ने देख कर लिया तो? इस अगले प्रश्न ने मुझे विचलित कर दिया और मैं तेज कदम उठाता हुआ घर की ओर चल पड़ा।

पिताजी नीमसिंह के पास बैठे हुए थे। माँ काम की कोठरी साफ कर रही थी। सावित्री बाबों के लिए ज्वार पका रही थी। धुएँ से पिछवाड़े का सारा दालान भरा हुआ था। उस धुआँधार में सावित्री कभी कभी गायब भी हो जाती थी। मैं उससे थोड़ी दूर खड़ा हो गया। मैं आज इससे जवाब बातचीत करूँगा। सोचा ठीक कहती है कि ऐसी अकेला

करने मे बुराई दिखाई जाती है ।" तब मैंने एक कुलटा के पति के सारे दुखों की कल्पना की और उन्हें अपने में आत्मसात किया । मेरा रोम-रोम सिहर उठा । कहीं इसने किसी दूसरे से प्रेम-व्रम कर लिया तो ? तब मेरे समस्त किस्सा तोता मैना की वे नायिकायें याद उठीं जिन्होंने किस तरह अपने प्रेमियों को प्राप्त किया और पतियों को उल्लू बनाया । मेरे तन में फुरफुरी-सी छूट गयी । मैंने यह निर्णय तुरन्त किया कि मैं इस तोता-मैना की पोथी को भट्टी में झोंक दूंगा । बड़ी खराब है यह पुस्तक ।

मेपकियों (उपले) ने आग पकड़ ली थी । धुआँ धीरे-धीरे साफ हो रहा था । उसके साथ मैंने देखा—आँखों को मलती हुई सावित्री आ रही थी । धुएँ के कारण उसका गोरा मुख रोने-रोने सा हो गया था । पर जैसे ही उसने मुझे देखा वैसे ही वह स्तंभित-सी खड़ी हो गयी । उस ‍े मुख मे लग रहा था जैसे उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा है । एक घर में रहकर कई दिनों तक जमकर बातचीत न करना एक पत्नी के लिए बहुत ही कठोर दंड होता है । देखते-देखते उसकी आँखें सजल हो उठीं ।

/ 'सच ऐसी सुशील और सज्जन स्त्री भाग्यशाली को ही मिलती है । कितना असीम धैर्य है इसमें जैसे यह कोई निर्जीव दीवार हो । कितनी गंभीरता है इसमें जैसे वह अथाह सागर हो । मैं एक क्षण में यह सब सोच गया । दूसरे ही क्षण मैंने अपनी भावुकता को संभाला ।

"पहले मुझे इसे डाँटना चाहिए ताकि यह मेरा रोब मानती रहे ।" मैंने सोचा और मैं प्रकट में बोला "सुन तो । मेरे हाथ के इशारे से वह मेरे पास आयी ।

"तूने सोफ्या को क्या कहा ?"

वह मेरे पास मुंह उतारे खड़ी हो गयी ।

मैं तुझे पूछता हूँ तूने सोफ्या को क्या कहा ?" मेरे स्वर में कृत्रिम रोष था आखिर घर की बात बाहर क्यों चली गयी ? सुन यह बहुत बुरी बात है ।"

मैंने देखा—उसकी बड़ी-बड़ी आँखें भर आयी हैं। उसके काँपते अधरों पर वेदना की अभिव्यक्ति थी जिससे उसके अधर और आकर्षक लगने लगे।

"घर की इज्जत घरवाली के हाथ में होती है। फिर जैसी तेरी मर्जी। जो तुझे अच्छा लगे वह कर।"

मैं घूमा। मुझे विश्वास था कि वह मुझे रोकेगी। पर उसने मुझे नहीं रोका। उसने अपना मुँह ओढ़नी के पल्ले में छुपा लिया और वह फूट-फूट कर रो पड़ी। मैं दो कदम चला। मेरे अहम ने मुझे चलने का आदेश दिया पर आत्मा की गहराइयों में सोयी वासना ने मुझे रोक लिया। किस कोने में जागी वासना प्रज्वलित लौ की तरह मुझे कपा गयी। मैं तुरन्त घूमा। उसके ढँके मुँह को उघाड़ा।

"रोती क्यों है? मैंने तेरे भले के लिए यह सब कहा है। यदि बापू जी को यह सब मालूम हो गया तो प्रलय हो जायगा। उन्हें नौकरों से बात करना भी गवारा नहीं। वह उन्हें एक रेंगती हुई घिनास समझते हैं समझी।"

उसने रोना बन्द नहीं किया। उसके गालों पर आँसू बहते जा रहे थे।

"अब तू रोना बन्द कर दे।"

"कैसे रोना बन्द करूँ? मैं निरभागी और कलमुँही हूँ। जब मुझे भगवान ने पैदा करने के समय ही दुख से भरा है तब मैं रोना कैसे बन्द करूँ? रोती रहूँगी और अपने भाग को कोसती रहूँगी।"

"ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए। पिताजी हमारी भलाई के लिए ही यह सब कहते हैं।"

वह भड़क उठी "यह कैसी भलाई है? आप जाकर जरा उन्हें पूछें कि इस उम्र में वह गुरु मामूजी से कितने दिन अलग रहे थे? जरा सी साँस ली कि पहुँचे मामूजी के पास। मामूजी एक बार पीहर क्या गयी थीं। वापस समय पर नहीं लौटीं तो जानते हैं आप ...

चलने लगी। चलती-चलती एक फव्वारा और छोड़ गयी। "सुनिये अब आप थक जाय तो मुझे बुला लीजियेगा सारी थकान हर लूँगी।" और वह गज-गामिनी की तरह मचलती हुई चली गयी।

मैं अपने कार्य में निमग्न रहा।

पिताजी आ गये थे। उन्होंने मुझे आते ही पूछा "कितनी बैठकें निकाली?

मैंने तीन सौ बैठकें निकाली थीं पर मैं झूठ बोला "पाँच सौ।"

"आज तू हवा की तरह चल रहा है!"

मैंने अपनी बैठक की गति को तेज करते हुए दबके स्वर में कहा "यह सब अभ्यास की बात है।"

बैठकों का दौर समाप्त हो गया। पिताजी ने आत्मीयता से अपने अंगोछे से मेरा पसीना पोंछा। मेरे कन्धों को दबाते हुए बोले "अब तुझे देखकर ऐसा लगता है कि तू—अपने बाप की शान में बट्टा नहीं लगने देगा। अब मैं तुझे बन्दूक चलानी भी सिखलाऊँगा।"

मैं कसरत से निवृत्त होकर खेत की ओर चल पड़ा।

उसी रात सावित्री ने मुझे फिर बुलाने का संकेत किया पर मैं जानबूझकर नहीं गया। मैं उससे कतराता रहा। उसने मुझ पर पानी के छींटे फेंके छोटे-छोटे कंकर पर सब व्यर्थ। मैं प्रगाढ़ निद्रा का बहाना करके पड़ा रहा। एक अव्यक्त मिश्रित हीनता और दुर्बलता थी जिसने मुझे चाह कर भी उठने नहीं दिया क्योंकि मैं सोचता था कि वह मुझसे ४ वर्ष बड़ी है।

उसके सात दिन बाद सावन लगने वाला था। मेरे ससुर ने सावित्री को लेजाने का पहले ही संदेशा भिजवा दिया था। माँ उसे पीहर भेजने को राजी नहीं थी। इसका मुख्य कारण था कि सावित्री के जाने के बाद माँ को गधे की तरह अकेले काम करना पड़ता था। तब वह पल भर के लिए भी चैन की साँस नहीं ले सकती थी। इसलिए उसने सावित्री को पीहर भेजने का हल्के रूप में निहायत ही ठण्डे ढंग से विरोध किया।

माँ ने अपने शब्द में गम्भीरता लाकर कहा "पर म काम-काज बहुत पड़ता है। मेरा शरीर भी अब जवाब सा ही दे रहा है। पहलेवाली शक्ति भी नहीं रही। फिर अकेले मेरा मन भी नहीं लगता।"

पिताजी चाहते थे कि वह चली जाय। इससे मेरे ब्रह्मचर्य का समय और बढ़ जायेगा तथा मैं निश्चिन्त होकर डंड बैठक करूँगा।

आखिर बात पिताजी की रही। यह निश्चय हो गया कि सावित्री अपने मैके जायेगी ही।

सावित्री के पीहर जाने और सावन लगने म अभी दो दिन शेष थे

मैं खेत के चारों ओर खोदी हुई खाई को ठीक कर रहा था। इन खाइयों का उपयोग यह था कि जब खेत-नाशक टिड्डी दल आता था तब हम उन्हें खाइयों में मिट्टी से पाट देते थे। एकाएक मैंने दूर पगडंडी पर नजर दौड़ायी तो देखा कि सिर पर खाना लिए सावित्री आ रही है।

उसके खाना लाने का यह पहला अवसर था। मेरा खाना या तो मेरी माँ लाती थी अथवा कोई गाँव का छोकरा। आज सावित्री को लाते देखकर मैं हैरान रह गया। मैंने झट-से फावड़ा रखा और मेंड़ से बनी झोंपड़ी में चला गया।

सावित्री आयी। उसने अपनी गठरी बाहर खोली और एक लम्बा थाल निकालकर खाने को जमीन पर रखा। उसकी बगल म पानी की लोटकी डोरी से बंधी हुई लटक रही थी उसे भी जमीन पर रख कर उसने एक अंगड़ाई ली। उसके हाथ के कंगन धीरे-से खनक उठे और सिर के बोर के चमकीले नग धूप की पतली लकीर के स्पर्श से चमक उठे।

मैंने उस पर दृष्टि जमाकर कहा "आज तू यहाँ कैसे आ गयी ?"

"क्यों मेरा यहाँ आना मना है। हरएक घरवाली ही अपने घरवाले का खाना लाती है, फिर मैं क्यों न लाऊँ ?" उसका स्वर तेज था जिससे मैं सहम गया। मैं विनम्र होता हुआ कहने लगा "तू मेरा मतलब नहीं समझी। मेरा कहने का मतलब यह है कि तू माँ को [illegible]

"नहीं समझता तो फिर मैं क्या करूँ ?

न्याय कीजिये ।"

कैसा न्याय ?

"आप का मन भी रखिये और मुझे भी सुख दीजिए। आप जरा सच्चे मन से कहिए, मेरी यहाँ कौनसी सखी सगत-रिश्तेदारी बैठी है जिससे मैं घड़ी-दो-घड़ी मन बहला लूँ। इस घर में मेरे लिए जो कुछ भी है वह आप हैं। अब आप इस तरह मुँह छुपाते फिरेंगे तो मेरे मन की कौन सुनेगा ? आप नहीं जानते कि मैं रात कैसे गुजारती हूँ ? आखिर तारे भी गिनते-गिनते आँखें दुखने लग जाती हैं। मन टूट कर बिखर जाता है। पोर-पोर में पीर उठ जाती है। जीवन में हम जैसी विवाहिता औरतों का सुख-संतोष यही तो है कि वह अपने 'सेज के सिंगार' के साथ दो चार घड़ियाँ हँस-बोल ले। अब यह नहीं फिर हाथों की चूड़ियों की खनक भी नहीं सुहाती।"

उसकी आँखें डबडबा आयी। विचार ने उसके गुलाबी गालों को सदा भर के लिए स्याह कर दिया। मेरा मन व्यथा से भर आया। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की मैं आज रात तुमसे जरूर मिलूँगा।

"आज भर नहीं—सदा-हमेशा। दो दिन बाद मैं पीहर एक माह के लिए चली जाऊँगी।

"अच्छा यहाँ मिल लूँगा।

"मेरी सौगन्ध खाइये।"

मैंने उसकी सौगन्ध खायी। वह हर्षोल्लसित होकर चली गयी। मैं उसके पिछले हिस्से और उसकी मस्तानी चाल को अपलक देखता रहा।

सूर्यास्त के साथ मैं घर पहुँचा। घर में कोलाहल मचा था। पिताजी अजगर की तरह बमक पड़े थे। कामिनी घूँघट निकाले एक कोने में दुबकी पड़ी थी। माँ माथा घूँघट निकाले कॉप सी रही थी। मैं उस ओर गया ही नहीं। बाहर खड़ा होकर सुनने लगा।

पिताजी कह रहे थे "मैं पूछता हूँ कि शरबती की माँ तेरी अक्ल कहाँ चली गयी थी ? तू तो सयानी-समझदार है, बहू को समझा देती ।"

"मैंने समझाने में कोई कोर-कसर नहीं रखी । पर बहू ने कानों में तेल डाल लिया । मेरे मना करते-करते चली गयी । मैं उस हम उम्र में बाँधकर बिठाने से तो रही ।

"उसे समझा देती । आखिर वह पहलवानी करता है । फिर मैं इन्हीं लोगों के सुख के लिए यह सब कर रहा हूँ ।

"आज-कल की छोरियाँ खसमों से घड़ी भर भी अलग नहीं रह सकतीं । अब लोगों का जमाना लद गया । जानते हो पहले घर-बहू कोठरी में दीया तक नहीं जलाते थे । मुँह से बोलना तक नहीं था । जब तक बहू बड़ी-बूढ़ी न बन जाती थी तब तक पति के सामने दिन के उजाले (प्रकाश) में आती ही नहीं थी । पर अब वे बातें कहानियाँ हो गयी हैं । कलियुग है—आज के छोरों-छोरियों की मथुरा तीन लोक से न्यारी ही है । किसी की कुछ सुनते ही नहीं । हमारे सास-ससुर जहाँ खड़ी कर देते थे वहाँ से हम हिलती भी नहीं थी । आजकल की बहुएँ सास-ससुर की बातों को कुत्तों का भौंकना समझती हैं ।"

पिताजी ने सावित्री को सम्बोधित करके कहा "तुझे अपनी सास के हुक्म को नहीं टालना चाहिए । यह बुरी बात है । हमारे घर की परम्परा के विरुद्ध है । और जो हो गया उसके लिए कोई उपाय नहीं है आगे से ऐसा होगा तो ठीक नहीं रहेगा ।"

सावित्री ने कोई जवाब नहीं दिया ।

सभी अपने-अपने कामों में व्यस्त हो गये ।

पिताजी कांग्रेस-पार्टी के दफ्तर चले गये । जैसे जैसे चुनाव नजदीक आ रहे थे पिताजी का महत्त्व बढ़ रहा था । सभी दलों के आदमी पिताजी के पास आते थे और उन्हें अपनी मदद करने के लिए कहते थे । पिताजी की अपनी कोई विशेष नीति नहीं थी । अगर उनकी अपनी इच्छा का उम्मीदवार खड़ा नहीं होता तो यह साफ था कि वह कांग्रेस का समर्थन

रात को हम दोनों फिर मिले। मौन और स्तब्ध वातावरण में उसने अपने मन की साध पूरी की।

और दो दिन बाद वह अपने पीहर चली गयी।

जाते समय उसकी आँखों में आँसू भरे थे।

× × ×

उसके जाने के ठीक तीसरे दिन एक दुर्घटना और घटी। बात यह थी कि चौधरी हरसुख के बेटे चीता ने हमारे खेत की पानी की नाली को काट दिया था। मैंने इसका विरोध किया। उसने कोई परवाह नहीं की। मुझे गुस्सा आ गया। मैंने उससे झगड़ा कर लिया। उसके सिर में खून आ गया और मेरा एक दाँत आधा टूट गया।

प्रायः सारे प्रतिष्ठित लोग चंद क्षणों में एकत्रित हो गये। ऐसा होता था कि ये साधारण झगड़े खून-खराबी का रूप ले लेते थे जिनके परिणाम उनकी औलादों को भी भोगने पड़ते थे।

एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। वह यह कि स्वतंत्रता के बाद हमारे यहाँ के प्रमुख शोषित किसान वर्ग की माली हालत बहुत अच्छी होने लगी थी। जो धरती उनके लिए अभिशाप थी वह सोना उगलने लगी थी। फल-स्वरूप किसानों में दूध घी की मात्रा का प्रचार कम होने लगा और शराब की मात्रा का अधिक। कुछ किसानों में जुआ खेलने की आदत भी पड़ गयी थी। और तो और पढ़े-लिखे किसान शहरों में वेश्याओं के यहाँ मुजरा सुनने भी जाने लगे थे। चीता मुझसे बड़ा था। उसका रंग काला और मुँह बन्दर की तरह कुछ आगे की ओर निकला

हुआ था। वह राजनीति में भी टाँग अड़ाता था और अपने आपको कौवे से भी चतुर समझता था। मेरे पिताजी की हर गतिविधि का विरोध करता था। साथ ही प्राय: वह मुँह की भी खाता था क्योंकि उसके समर्थक मुट्ठी भर थे। मुझे वह सावित्री को लेकर चिढ़ाता रहता था। उसके चिढ़ाने का ढंग भी बड़ा विचित्र था। परिहास-परिहास में वह जूते मार देता था।

कहता "तेरी बहू तुमसे बड़ी खासी रहती होगी।"

"क्यों? मैं पूछता।

'इसलिए तू खसम छोटा है। छोटा खसम बड़ा सुहाग होता है।

या कहता "यार, सच-सच कहना वह हथिनी तुझे बच्चे की तरह गोद में उठा लेती होगी?"

मैं उत्तर में उसे कवल पत्थर बह दिया करता था। जब उसने मेरे खेत की नाली काट दी तब पिछली सभी बातों का बदला लेने की मेरे मन में प्रमत्यारित आ गयी थी। मैंने झट से लाठी निकाल कर उसके सिर पर दे मारी थी।

भीड़ जमा हो गयी थी। मर पिताजी कन्धे पर बन्दूक लटका कर आ गए। हरगुन भी कम नहीं था वह भी अपनी 'दुनाली' निकाल लाया। किन्तु लोगों ने उन्हें रोक लिया। पंचायत बैठी और पंचायत ने उसे हरगुन के बेटे की बदमाशी ही बताया। नाली वापस खोल दी गयी।

इस उत्तेजना पूर्ण वातावरण में मर पिताजी और हरगुन में एक शर्त लग गयी। वह शर्त थी—मरी और जीता की कुश्ती। हालांकि हम दोनों पहलवान नहीं थे पर पिताजी का अहम् कुछ करना चाहता था। वह एक बार हरगुन की पगड़ी अपने पाँवों म रुलवाना चाहते थे।

शर्त लग गयी। सारे गाँव वालों के बीच कुश्ती दीवाली के बाद

होगी निश्चय हुई । कुछ समय चाहिए—शरीर की शक्ति की वृद्धि के लिए । अब पिताजी मेरे प्रति और सजग हो गये । उन्होंने एक दिन सुबह-सुबह माँ से कहा "सरवण की माँ सरवण की ससुराल कहलवादे कि बहू को दीवाली के बाद भेजे । जब तक कुश्ती न हो जाय तब तक सरवण अपनी बहू के पास न जाने पाये वर्ना सारी मेहनत पर एक दिन में पानी फिर जायेगा ।"

माँ को यह बात अच्छी नहीं लगी । सावित्री के संग रहते-रहते माँ उसके स्वभाव के बारे में जान गयी थी । उसे इस बात का ज्ञान था कि बहू उसके बेटे के बिना नहीं रह सकती किन्तु पिताजी के दीवाहीन गुस्से के समक्ष किसी की भी नहीं चलती थी । संदेशा ससुराल पहुँचा दिया गया । पिताजी ने राहत की साँस ली ।

अब मुझ पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा । मारुति व्यायाम मंदिर के पहलवान मक्खन महाराज सुबह-सुबह मुझे दाँव पेच की शिक्षा देने आते थे । घी-दूध की मात्रा भी बढ़ गयी थी । मेरी हर गतिविधि पर खूब ध्यान रखा जाने लगा था ।

गाँव की चौपालों तालाब के घाटों और खेतों के चौराहों पर इस कुश्ती की बड़ी चर्चा चल पड़ी । लोगों में उत्साह दिखने लगा । पिताजी उस दिन से अपने पास भरे अतिरिक्त अपनी बन्दूक को भी सुलाने लगे । क्या पता रात बिरात हरसुख घर पर धावा बोल दे तो ?

पिताजी हर जगह मूंछों पर ताव दे-देकर कहते थे "इस बार हरसुख की नाक काट कर ही छोडूँगा ।"

उधर हरसुख भी मौन में नहीं था । उसका मौंझा बेटा विरोधी व्यायाम शाला 'प्रभु व्यायाम शाला' के पहलवान किसना महाराज से शिक्षा ले रहा था । जीता का पुष्ट होते अंग-प्रत्यंग उसकी कुरूपता में वृद्धि कर रहे थे । उसे देखकर मेरे मन में यह भावना जागती थी कि वह किसी इन्सान का नहीं शैतान का बच्चा है । भयानक और घृणित ।

मुझ में अंधा जोश आ गया । जीता की चुनौती ने मुझ में नई स्फूर्ति

और ताजगी भर दी। मैं दूने वेग से कसरत करने लगा। मेरे अंगों में निखार सा आने लगा।

सावन के झूले पेड़ों की शाखाओं में डाल दिए गये थे। युवतियाँ लाल पीले, धानी गुलाबी और केसरिया वस्त्रों में सज्जित अपने मधुर स्वर में गाने मग्न थी।

बड़ा अच्छा मौसम था। इस मौसम में जब कजरारे बादल आकाश में घिरे रहते थे और युवतियाँ पग कंगन खनकाती और पायलियों के घुँघरू बजाती खेतों और मरघट की घास पर छमक छमक करती गुजरतीं थी तब मुझे साथियों की याद आ जाती थी। उस दिन अचानक ही मुझे उसकी बहुत याद आई। हुआ क्या? खेत में काम करते-करते मेरी दृष्टि साहिया कुम्हारी (बाल वाली जाति-सूचक पर पड़ वह अपने प्रेमी के बदन में हाथ डाल जा रही थी। उसे देखकर मैं उत्तेजित हो गया था।

मैं मेड़ में मन मारे बैठा हुआ घूमते हुए पंछियों का देख रहा था। दूर-दूर तक काली घटाओं का साम्राज्य छाया हुआ था। मोर चहक रहा था।

न जाने क्यों मेरी इच्छा लाँछा से मिलने की हो गयी। मैं डरा। मुझे हर कदम पर भय लग रहा था। पिताजी के सामने किसी ने इसकी चुगली कर दी तो? ... सोचकर मैं रोमांचित हो उठा था। पर हृदय कुछ देर किसी स्त्री से बात-चीत करना चाहता था। बात का विषय कोई भी हो इससे मुझे कोई आपत्ति नहीं थी।

मैं चोर की तरह लाँछा के घर पहुँच गया। वह उसी पेड़ में पानी सींच रही थी। उसके चेहरे पर उदासी छाई थी। उसकी पलकों के कोर भीगे से थे।

"लाँछा!" मैंने उसे चौंका दिया। समीप जाकर बोला "इस पेड़ से तुम्हें बड़ा मोह हो गया है।"

"हाँ भरवाए! यह पेड़ मेरे भैया की याद के रूप में है। सौम-सवारे मैं इसे सींचती हूँ। एक दिन ...

मुझे इसे देखकर हिये का कुछ संतोष मिलेगा।

"तुम्हें भैया बहुत याद आते हैं।"

"अरे पगले मैं यदि सांस लेना भूल जाऊँ तो उसे भी भूल जाऊँ। मेरे रक्त की एक-एक बूँद में वह बस गया है। जानते हो विधि ने मेरे तन का प्रीतम किसी और को बना दिया था पर मन ने उसे भी स्वीकार नहीं किया। यह तो अच्छा ही हुआ कि तन वाले से मेरा नाता जल्दी ही टूट गया और तेजू में..." उसकी आँखें भर आयीं "मरघट तेजू के जलते ही मैंने चूड़ियाँ तोड़ दीं मांग में सिन्दूर भरना बन्द कर दिया। लोग मुझे कुलटा कहते हैं पर मैं कुलटा नहीं हूँ। मन से तेजू को ही वरा था और उम्र भर उसी की ही बनकर रहती पर मुझ निरभागी के ऐसे अच्छे भाग कहाँ? वह चला गया। मेरा संसार सूना करके चला गया।" काश मैं भी उसी तालाब में डूब मरती।"

मैं उसकी कठोर व्यथा से भीग गया। तब मेरी समझ में नहीं आया था कि वह कैसा प्यार है?

मैंने उससे कहा "किसी के पीछे अपने जीवन को नाश करना न्याय नहीं लीला! अर्थहीन त्याग का क्या मतलब? फिर यहाँ तुम्हारी दशा भी अच्छी नहीं है।"

"त्याग अर्थहीन नहीं होता। किसी की याद में जलना अन्याय नहीं। अन्याय तो वह काम है जो आत्मा के विरुद्ध किया जाय। आत्मा जिसे स्वीकार करती है वही श्रेष्ठ कर्म होता है। उसकी महत्ता को कौन स्वीकार करेगा? रही दशा उसके बारे में मैंने सोच लिया है।"

लीला के सम्मुख मैं अपने को नादान-सा महसूस करता था। मुझे लगता था कि मैं इससे बातों में नहीं जीत सकता। यह अपढ़-गंवार भले ही हो पर प्यार की पीड़ा ने इसकी चेतना को मुखरित कर दिया है। इसके अन्तर के तम को आलोकित कर दिया है।

वह पेड़ के चारों ओर उगी घास को ठीक करने लगी। उसकी दृष्टि पेड़ पर थी। मेरी ओर क्षण भर के लिए देख कर उसने कहा "आज

तू रास्ता कैसे भूल गया ?"

"भूला नहीं हूँ लीला, जान बूझ कर आया हूँ। तुमसे मिलने की इच्छा हो गयी।"

"क्यों ?"

"ऐसे ही।"

"एक बात मानोगे मेरी ?" उसकी आँखों में प्रश्न था।"

"मानूँगा।"

"यहाँ न आया करो। मुझे मालूम हुआ है कि तेरे बापू मुझसे बोलने पर नाराज होते हैं। बापू को नाराज करना मजूर बेटों का काज नहीं है।"

मैंने उसको देखकर कहा, "बापू हर काम में जोर जबरदस्ती करते हैं। उनकी इच्छा ही सबकी इच्छा हो यह कब सम्भव हो सकता है।"

"कुछ भी हो उन्हें नाराज करना अच्छा नहीं है मरवान। मैं परायी हूँ। मेरे बिना तुम लोगों का कोई काम नहीं रुकने वाला है।" वह चौंक कर बोली, "और हाँ, मैं शहर जा रही हूँ।"

"क्यों ?"

"मेरी सहेली ने बुलाया है। शहर में मेरी एक खास सहेली है उसने बस इतना ही लिखा है कि मन चाहे भी एक बार आ जाओ। कसम है मेरी तुम्हें। मैं वहाँ एक बार तो जाऊँगी ही।"

"फिर तुम्हारा यह पेड़ ?"

"यह ऐसे ही फलेगा-फूलेगा।"

"कौन देख-रेख करेगा ?"

"मौसी जाहिद। वह कल से इस घर में आकर रहेगी। मैंने उसे कह दिया कि मेरे दो-तीन रुपये भले ही खर्च जायें पर मेरा यह पेड़ नहीं सूखना चाहिए। यह मेरा जीवन है।" वह एक पल रुकी और बोली, "कभी कभी दो-दो रोज भूखों मरना पड़ता है। कुछ नहीं खाया जाता है तो पपड़ा भी नहीं बनता है। बड़ी विकट समस्या बन जाती

है। तब सोचती हूँ—थोड़े दिन के लिए यहीं चली आऊँ।" "जानते हो पिछले तीन दिन से कुछ भी नहीं खाया है।

"ओह ! मुझे कहला क्यों न दिया ?"

"हाथ फैलाने की आदत नहीं है। फिर सहेली का धन ?"

"मेरे लायक कोई काम-काज ?

"नहीं। तू चिरायु हो। बेचारी सावित्री को दुख है।" उसका स्वर करुणा से भर आया "वह माय है सरनाए। उसकी खुशी ही तेरी खुशी है। उसे तू जितना सुख देगा प्रभु तुझे उतना ही सुख देगा।

लेकिन बापू ने उसे चार माह के लिए पीहर से न आने का हुक्म दे दिया है।"

"यह अच्छा नहीं किया। वह केवल यहीं रहना चाहती है। उसे पीहर में बड़े व्यंग सुनने पड़ते हैं। उसकी छोटी बहिनें उसकी मजाक उड़ाती रहती हैं। तू उसे यहीं पर बुला ले।"

"पर बापू जी ?"

वह बीच में ही बोल पड़ी "अधिक नादिरशाही सदा बुरा फल देती है। कभी-न-कभी तेरे बापू तेरी बहू से अपना बड़ा अपमान करायेंगे।"

वह गंभीर हो गयी। मैं पत्थर की तरह निश्चिन्त खड़ा रहा।

× × ×

सावन के बीतते ही सावित्री बिना किसी खबर के घर आ गयी। हम सभी लोग उसे देखकर विस्मित हुए। पिताजी की आँखों में उसे देखकर कई प्रश्न एक साथ जाग उठे।

"तू किसके साथ आयी ?" पिताजी ने आखिर उसे पूछा। वह मौन रही। सास-ससुर के समक्ष बहू नहीं बोलती है—हमारे राजस्थान के प्राय: ग्रामीण परिवारों में।

"मेरी बात का जवाब नहीं दिया।" उन्होंने स्वर को कठोर किया।

माँ ने बीच में अवरोध उत्पन्न किया "वह आपको कैसे जवाब देगी ?"

"वह तुमसे नहीं बोलती, मुझसे नहीं बोलती। फिर मैं आने का कारण कैसे जानूँगा ?" पिताजी ने खीझ कर कहा। उनके चेहरे पर रोष भाव रहा था।

माँ तुरन्त हमारे परिवार की एक छोटी लड़की को बुला लायी। उसे देखकर पिताजी ने कहा "लाडी, जाकर अपनी भाभी से पूछ, वह किसके साथ आयी है ?"

लाडी सावित्री के पास चली गयी। सावित्री बड़ा घूँघट निकाले हुए थी। उसने अपना मुख दीवार की ओर कर रखा था। उसने लाडी से कहा "मैं अकेली आयी हूँ।"

लाडी ने पिताजी से कहा "भाभी अकेली आयी है।"

"अकेली।" पिताजी चौंक पड़े "उसे घर की बहू-बेटियों के

ही नखरा होते हैं। अगर रास्ते में कोई इज्जत से लेकर जाता तो ? ठिक।" पिताजी ने अपने मुँह का थूक निगल कर कहा "क्या तेरे बाप को तुझे इस तरह भगते हुए शर्म नहीं आयी। ऐसी कौन-सी भूल हो गयी है जिससे बेटी को इस तरह भेजा।"

साली ने बताया "काकी कहती है मुझे बापू ने नहीं भेजा मैं उन्हें बिना पूछे यहाँ चली आयी हूँ। वह तो मुझे दीवाली के बाद ही भेजते थे पर मेरा मन वहाँ नहीं लगा।

"बिना पूछे।" पिताजी सकते में आ गये "अपने बापू को बिना पूछे हुए। राम राम! देखो नरसण की माँ तेरी बहू की करतूत। बिना पूछे हुए चली आयी है। जैसे वहाँ इसे साँप बिच्छू काटते थे।"

साली ने फिर बताया "काकी कहती है वहाँ मुझे साँप-बिच्छू नहीं काटते थे पर वहाँ मेरा मन नहीं लगता था।"

"क्यों नहीं लगता था। ऐसे घर की बहू-बेटी इस तरह भागने लग जायगी फिर रह गयी पगड़ी की इज्जत। आज तू यहाँ भाग कर आयी है कल तू कहीं और भाग जायगी। हे प्रभु, यह तू मुझे किस जन्म का बदला दे रहा है।" वह ईश्वर से विनती करने लगे।

माँ ने कहा "अब आप चुप रहिए। घर की इज्जत का सवाल है और दीवारों के भी कान होते हैं समझे। अब आप समधीजी के यहाँ कहलवा दीजिए कि बहू हमारे घर पहुँच गयी है। बात का बतंगड़ बनाने से कोई फायदा नहीं है।

पिताजी का स्वर तेज हो गया। वह अकड़ कर बोले, "नहीं। वह जिस पाँव आयी है इसे उसी पाँव वापस जाना पड़ेगा।"

सावित्री ने सिर हिलाकर बड़बड़ाया।

साली ने बताया "काकी वहाँ नहीं जायगी।"

"उसे वहाँ जाना पड़ेगा।"

सावित्री भीतर की ओर जाती हुई साली से बोली "साली कहदे मैं अपनी जान दे दूँगी पर पीहर नहीं जाऊँगी।" और वह भीतर चली

गयी। पिताजी का पौरुष चीख उठा। उनकी आँखों में रक्तिम डोरे चमक उठे। वे कड़क कर बोले "बहू! जानती है तू किसके सामने बोल रही है। जो आदमी अपनी बात की रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगाता आया है उसे यह चुनौती।

माँ ने उन्हें चुप करके कहा "आप धीरज रखिए यह त्रिया-हठ है। चढ़ा नशा फिर नहीं उतरेगा।

उसके चुप होते ही हम लोगों ने सावित्री का रोना सुना। रोने के साथ उसका बड़बड़ाना "इससे अच्छा है कि मुझे आप गला घोंटकर मार दीजिए। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। रोज रोज के झंझट से तो आप छूटें।"

पिताजी ने अपने ललाट पर जोर का थप्पड़ मारा और वह विद्रोह कर बोले "भरतार की माँ! चुप कर दे इस बेशरम को। लाज-शरम को बेच पी गई है। कैसी भी तरह जबान चलाती जा रही है मेरे सामने। हाय! कैसा जमाना आ गया है। हमारे माँ-बाप भरतार की माँ की बोली सुनने के लिए उम्र भर तरसते रहे।"

माँ ने फिर पिताजी को हाथ जोड़कर कहा "मैं आपको हाथ जोड़ती हूँ आप चुप रहिए। बरसों भर की इज्जत को अपने हाथों ही कीचड़ में भर रहे हैं। जो हो गया उस जहर का घूँट समझकर पी जाइए।"

"तू मुझे कहती है। उस बढ़चढ़ बहकने वाली चिड़िया को क्यों नहीं कहती।"

उस समय पिताजी के चेहरे के भाव असमर्थ प्रतिद्वन्द्वी के सदृश थे।

"वह मूर्ख है पर आप तो समझदार हैं। आप उसके बराबर क्यों हो रहे हैं।" माँ ने फिर कहा।

मैं चाहता हूँ इसे यह दे कि यह जनम अपने मैके चली जाए।" उन्होंने अपने पाँवों को इकट्ठा किया। उस पर दोनों हाथों को रखा जैसे साधारणतया बालक रूठ जाने पर रखते हैं।

यह एक लोक-सम्नारी है जो अपने राह चलते पति के लिए आकाश में कड़ती बदली की तरह छाया करती रहती है और एक सावित्री है जो सुख की साँस भी नहीं लेने देती। उसने एक बहरीम वातावरण की रचना कर रखी है।

मैं विचारों में खो गया। अप्रत्याशित मुझे धक्का-सा लगा। एक सिहरन-सी दौड़ गई-मेरे मन में। कहीं सावित्री मेरा विरोध कर बैठती तो ? तब मेरे सम्मुख उसका बलिष्ठ शरीर नाच उठा। मैं घबरा गया। कदाचित मेरे मन के अवचेतन में उसके बलिष्ठ शरीर का आतंक बस गया हो।

फिर मुझे अपने ऊपर पर ग्लानि हुई। मुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। आखिर वह यहाँ रहना चाहती है तो पिताजी उसे क्यों नहीं रहने देते। वह भी इतना हठ क्यों करते हैं ? बकर वहाँ उसे उसकी सहेलियाँ चिढ़ाती होंगी ? उसके दुर्भाग्य पर आँसू बहाने की बजह कहकहे लगाती होंगी। आखिर हर आदमी का अपना अहम् और स्वाभिमान होता है। उस अहम् को चोट पहुँचाने का सीधा तात्पर्य यह होता है कि उसे मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाना उसे विद्रोह करने के लिए तैयार करना।

मैं इसी उधेड़बुन में घर पहुँच गया।

उदास-उदास सा घर। उदास-उदास सी हवा।

पिताजी घर में नहीं थे।

माँ और सावित्री सदा की तरह काम-काज में व्यस्त थीं। माँ का मुँह उतरा हुआ था और सावित्री का मुख्य-मुख्य चौर घूँघट में छुपा हुआ था। मैं उसे देख नहीं पाया पर मुझे यह तुरन्त मालूम पड़ गया कि आज उसका चौर वहाण के हिंसक पंजों में दबोचा हुआ है।

सावित्री कपड़ियों को सजा-सजा कर रख रही थी। माँ दूध को चूल्हे पर चढ़ा कर बड़े चुरने से हिला रही थी।

मुझे देखते ही उसने कहा "भरवाए चल रोटी खा ले।

मुझे भूख लग गयी थी किन्तु मैंने इच्छा के विरुद्ध बगावत करके

गुस्से में कहा "मुझे भूख नहीं है।"

मैं मेड़ी पर आकर बैठ गया।

अन्धेरा पश्चिम से उतर कर खेतों-खेतों में घूमते वृक्षों उनकी शाखाओं उनकी पत्तियों धरती से निकलती बेलें और घासों को अपने में लीन करता हुआ बढ़ रहा था।

धीरे-धीरे अँधेरा घरों की मुँडेरों को निगल गया और निगल गया—घर की एक-एक दीवार को एक-एक कोने को।

चुल्हे हिलाने की आवाजें 'सी सूँ' आ रही थी।

आवाज रुकी।

माँ ने कहा "बहू! मन्दिर में दीया-बत्ती कर दे।"

मन्दिर में दीया जला।

सदा की तरह सावित्री ने माँ के चरण-स्पर्श किये। मैंने भी ऊपर से कहा "माँ! पगे लागूँ।"

माँ ने आशीर्वाद दिया "जीते रहो बेटे, तुम्हें चाँद-सूरज की उमर लगे।"

और फिर उसने स्नेह-सिक्त स्वर में कहा "जितनी भूख है, उतना ही खाले।"

"मुझे जरा भी भूख नहीं है।"

"एक-दो फुलके ही खाल।"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

"बहू!" माँ ने पुकारा।

झमकी पायल बजने लगी।

"बहू! तू जाकर इसे ऊपर खाना दे आ। कभी-कभी न जाने किन पापों का दण्ड मुझे भोगना पड़ता है।" यह सब माँ ने अपने आप से कहा और वह अपने काम में तन्मय हो गयी।

बहू की पायल की झनकी-झनकी झंकार से मुझे पता लग रहा था कि वह खाना परोस रही है।

थोड़ी देर में वह थाली लेकर ऊपर आयी। यह पहला अवसर था। क्योंकि पिताजी सदा कहते थे कि खाना माँ के हाथ से खाना चाहिए चाहे ज़हर ही हो। उनके इस कथन में माँ की आत्मा की आस्था व विश्वास प्रकट होता था। मानों माँ अपने बेटे को भोजन में कभी विष नहीं दे सकती। इसके अतिरिक्त प्रायः खाना मैं और पिताजी साथ ही खाते थे।

सावित्री मेरे सम्मुख खड़ी थी। उसने घूंघट हटाया लोटा नीचे रखा। फिर उसने थाली को मेरे सामने रखते हुए कहा 'रोटी खीम लीजिये।

'मुझे भूख नहीं है।' मैंने उसे झिड़कते हुए कहा।

उसने मुझे हाथ जोड़ कर प्रार्थना की "आपको मेरी सौगन्ध है। देखिये मुझ अभागी को और अधिक अभागी मत बनाइये।" उसने मेरे पाँव पकड़ लिये।

"देख मुझे तंग न कर, आज मेरा मन बिलकुल अच्छा नहीं है।" मैंने बड़ी रुखाई से कहा। मैंने अपनी दृष्टि गहरे होते हुए अन्धेर की ओर कर ली।

उसके स्वर में करुणा तैर आयी "खा लीजिये।"

"नहीं।"

उसने मेरी ठोडी घुमाकर मेरा मुंह अपनी ओर किया। मैं उसके मुखड़े का विचार नहीं देख पाया। उसके चेहरे पर बिल्कुल अंधेरा अटका था।

मैंने अपनी सौगन्ध खिलाई है आपको क्या इस छोटी सी बात के लिए भी आप मेरी सौगन्ध नहीं रखेंगे।"

"पहले मेरी बात का जवाब दे तू लड़की स्त्रियों की तरह कि तुम मरे यहाँ क्यों आ गयी? तुम तो सोचना समझना था। उसके नदी को देखना था। किन्तु तू ? जानती है बापू की आँखों से सदा-सदा के लिए गिर गयी।"

जैसे मेरे पीहरवाले समझ जायेंगे कि मैं यहाँ ही अच्छी हूँ।

"यह तो बापू ने कहलवा भी दिया है। पर तूने यह हिम्मत कैसे की ?"

"मुझे आपकी मोह खींच लायी। मैं आपके बिना नहीं रह सकती। मुझे आपके बिना सब सूना-सूना लगता है। इसे आप कुछ भी समझ लीजिये। फिर मुझे वहाँ का वातावरण अच्छा नहीं लगता।"

"किन्तु बापू ने जीजा से तेरी छुट्टी तय कर ली है। छुट्टी में जाना जरूरी है क्योंकि यह बापू की शान का सवाल है।"

"आप जैसा हुक्म देंगे उसे मैं सिर-आँखों पर रख लूँगी। मेरी केवल एक ही शर्त है कि आप मुझे पीहर मत भेजें। आप नहीं जानते कि पीहर में मेरी सहेलियाँ मेरी कितनी मजाक बनाती हैं। ओछे अश्लील वाक्यों एवं इशारों से चिढ़ाते हैं। मैं वहाँ किसी भी हालत में नहीं रह सकती।" और उसने अपने हाथ से मुख सहला और दिया। उसके आग्रह को अब टालने का मेरा साहस नहीं हुआ। मैंने खाना खा लिया। वह बहुत प्रसन्न हुई। विह्वलता के मारे आँसू बहा बैठी।

पिताजी बाहर से आ गये थे। उन्होंने अपने साफे को माँ के हाथ में देते हुए कहा अरुण कहाँ है।

"ऊपर।"

"क्या कर रहा है ?"

"रोटी खा रहा है।

"ऊपर ? क्यों ? क्या बात है ?"

माँ ने सहज स्वर में उत्तर दिया "खाना नहीं खा रहा था। मैंने बहू को हुक्म दिया कि अब तू उसका खाना ऊपर दे आ।"

"यह तू ने अच्छा नहीं किया। जीजा पहलवानी करके शेर की तरह हुँकार रहा है और तू ।" पिताजी व्यथाभिभूत हो गए। धीमे स्वर में बोले "अरुण की माँ मैं सब कुछ मान सकता हूँ पर दुनियों की तरह रोना नहीं सुन सकता।" प्यार से उसे तो बहू पर नजर रखना कर

नहीं। मगर बचती कि बन्दूक बाहर निकली।" वह टूटे हुए इन्सान की तरह हताश हो बैठ गये "आज बहू के जवाबों ने मुझे यह अहसास करा दिया कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ। मेरे प्रताप का सूर्य मन्दा पड़ गया है। आज तक दुश्मन की भी बहू-बेटी मेरे सामने से पगरखी पहन कर नहीं गुजरी है। मेरी बात का जवाब नहीं दिया है। उफ! मेरे पुण्यों की महिमा समाप्त हो गयी है।

'बहू नादान है।' माँ जी ने उन्हें ठंडा जल पिलाते हुए कहा "कुछ दिनों में अपने आप सब समझ आ जायेगी।"

"इस उम्र में समझ नहीं आयी फिर कभी नहीं आयेगी। कच्ची मिट्टी को ही कोई शक्ल दी जा सकती है पकने पर नहीं।"

तभी मैं नीचे उतर आया।

मेरा सिर अपराधी की तरह झुका हुआ था। चुपचाप आकर पिता जी के पास बैठ गया।

पिताजी ने मुझ पर व्यंग किया "बहू के हाथ से खाना जीम आये? क्या माँ तुम्हें जहर खिला देती?" पिताजी ने मानों जल कर कहा। मुझे उनका व्यवहार जरा भी अच्छा नहीं लगा।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। पिताजी मौन-गम्भीर होकर थोड़ी देर बैठे रहे अन्त में यह बोले "क्यों बेटा मैं अपनी हार ही मान लूं। जीता से कुश्ती लड़कर तू नहीं जीत सकता। बाद में लोग बुरी तरह मेरी पगड़ी उछालें इससे अच्छा है कि मैं पहले ही हरसुख के पाँवों में अपनी पगड़ी डाल दूँ।"

"मैं जीता से निर्बल नहीं हूँ" मैंने अपनी भुजाओं को बजाते हुए कहा "मैं उसे कागज के पुतले की तरह मरोड़-मसोस सकता हूँ।"

"कुश्ती बात से नहीं ताकत से लड़ी जाती है और तू आठों घड़ी चौसठ पहर अपनी बहू के घाघरे का ढेर (जूँ) बना रहता है। ये दो विपरीत काम किस तरह होंगे?" वे मुझे उपदेश देते रहे। झिड़कते रहे समझाते रहे।

अंत में मुझे क्रोध आ गया मैं आवेग में बोला "भाभी से मैं अपना संतोष बिलकुल अच्छा रखूँगा। यदि उसको झूठा करूँ तो आपकी सौगन्ध।"

माँ और पिताजी एकदम चौंक उठे।

मैंने आकाश की ओर निहार कर कहा "मैं बीवा को चींटी की तरह समझ सकता हूँ। दीदाजी क्यों व्यर्थ ही चुटकी लगाते हैं।" मैं बहुत उत्तेजित हो गया था। आवेश में काँपने लगा।

"बात का मजा वक्त पर ही आयेगा। बस तू अपने हाथ-पाँव सँभालने में लगा रहे। दूध घी को पानी की जगह पी।"

उसी रात मैंने अपनी प्रतिज्ञा को कई बार दोहराया। दोहराने का अब स्पष्ट था कि मैं अपनी आत्मा को मजबूत कर रहा था। मुझे बार बार भय लग रहा था कि मैं अपनी प्रतिज्ञा से डिग न जाऊँ।

दूसरे दिन मैंने अपनी यह प्रतिज्ञा सावित्री को भी सुना दी।

सावित्री को एक बार मेरी बात पर विश्वास नहीं आया। मुँह बिचका कर, चुटकियाँ बजाकर बोली "भीष्म पितामह का युग नहीं है मेरे सरदार! (प्रीतम)। इस जमाने में ऐसी प्रतिज्ञायें निभाना जैसे तीरों (धारों) पर चलना है।"

"अगर तू साथ दे तो यह सब सम्भव है। मुझे तेरी ओर से ही डर लगता है। तू बादल देखकर बावली हो जाती है और बिजलियाँ देखकर तेरे मन में मचमची उठ जाती है। पपीहा की पीऊ-पीऊ सुन कर तेरा हृदय पिया के लिए विकल हो जाता है और 'चौमासा' सुन कर तेरा मन अपने सरदार से प्यार करने के लिए उतावला होने लगता है।"

"आप मुझे दोष देते हैं। मैं उसे स्वीकार भी करती हूँ। दिन भर की मेहनत के बाद आखिर मैं क्या करूँ? इतना बड़ा घूँघट इतना लम्बा मून (मौन)। न किसी से हँसना बोलना और न किसी से हँसी-मजाक। एकदम सूना जीवन और कठोर मेहनत।"

"यह ठीक है। ऐसी बात नहीं कि मैं तेरे पीर को नहीं समझता हूँ पर घर की शान इस बात से बड़ी होती है। प्रतिज्ञा पालन से बनी

बहू दोनों का हाथ रहना ही चाहिये। तुम तो थोड़ी पढ़ी-लिखी हो। रामायण के राजा दशरथ की रानी कैकेयी अपने पति के संग युद्ध भूमि में गयी थी। जब राजा के रथ के पहिये की कील टूट गयी तब रानी ने अपने हाथ की उँगली देकर राजा की जान को बचाया था। क्या तू मेरा साथ नहीं देगी ?

'एक शर्त पर दूँगी।"

"क्या ?"

"आपको सदा घड़ी दो घड़ी मुझसे हँसना-बोलना पड़ेगा ?"

पर मौका मिलने पर।

हम दोनों ने यह निश्चय कर लिया।

दिन गुजरने लगे।

× × ×

गणेश चौथ आ गयी।

गणेश चौथ को हमारे यहां गांव में कुश्तियां होती थीं। प्रत्येक अखाड़े के पहलवान दल बना कर दूसरे अखाड़े जाते थे। वहां अपनी अपनी जोड़ से कुश्ती लड़ते थे। जिस अखाड़े के पहलवान जितने अधिक जीतते थे उस अखाड़े की विजय घोषित की जाती थी।

गांव में दो बड़े अखाड़े थे और दो-चार छोटे।

मैं अभ्यास जोर-शोर से कर रहा था। इन दिनों मेरी पत्नी मेरे ब्रह्मचर्य में खूब सहयोग देती थी पर कभी भी। उत्तेजित नहीं होती थी

और न कभी मेरा वासनात्मक स्पर्श करती थी। हाँ, कभी-कभी मैं अवश्य वासना का हो जाता था तो वह मुझे उपदेश देकर ठंडा कर देती थी। मुझे पिताजी की सौगन्ध की याद दिला देती थी। और मेरा सारा उन्माद उतर जाता था।

एक दिन मैं खेत में था। माँ के पाँव में मोच आ गई थी इसलिए सावित्री 'भाता' लेकर आई।

घोर एकान्त था। तोता अपनी बहू के साथ चुहल बाजियाँ कर रहा था। मुझे क्या सूझी कि मैंने सावित्री का हाथ पकड़ लिया। वह अपना हाथ छुड़ाने की चेष्टा करने लगी पर मैंने उसे दोनों हाथों से जकड़ लिया। दोनों हाथों से पकड़ने का एक कारण और भी था कि मुझे अब भी अपनी शक्ति पर इतना विश्वास नहीं था कि मैं एक हाथ से सावित्री को अपने काबू में रख पाऊँगा।

उसने कातर-स्वर में कहा "मुझे छोड़ दीजिए।

'देखो मौसम कितना अच्छा है।" मेरी आँखों में वासना का भयंकर ज्वार था।

"आपको अपनी प्रतिज्ञा का ध्यान होना चाहिए।" उसने डरते हुए कहा। उसकी दृष्टि में मन को ठेस पहुँचाने वाली मासूमियत थी। मैं एक पल के लिए विमूढ़ हो गया।

मैंने उसकी बात को अनसुनी करके कहा, "वह तोता है न अपनी बहू के साथ देख उधर ।"

'मुझे आप छोड़ दीजिए।" उसका स्वर कठोर हो गया। वह थोड़ी थोड़ी गुस्से में काँपने लगी "आपको जरा भी लाज-शर्म नहीं। अपने बाप की कसम खाई है, समझे।

फिर भी मैंने उसका हाथ नहीं छोड़ा। उसे अपनी बाहों में पकड़ने लगा। बोला "वह भी तो मनमानी कर रहा है!"

अब उसने अनुनय छोड़ दिया। उसने क्रोध में बिफरकर मुझे इतने जोर से धक्का दिया कि मैं मचान से गिर पड़ा। मेरा मुँह धूल-धूसरित

हो गया। मुझे एकदम गुस्सा हो आया। मेरी इच्छा हुई कि मैं उसे दाँव लगा कर नीचे गिरा दूँ और यह प्रमाणित कर दूँ कि मैं तुमसे बहुत ताकतवर हूँ। तब तक मैं कुश्ती के बहुत दाँव सीख चुका था। लंगड़ी, मुलतानी दाँव धोबी-पाट आदि। मैं धूल झाड़ कर उठा। उसने शेरनी की तरह गरज कर कहा "खबरदार मुझे छुआ तो ठीक नहीं रहेगा। मैं एक पल में सारी हेकड़ी भुला दूँगी।" और तब मैंने उत्तेजना में यह अनुभव किया कि उसका कद बहुत लम्बा हो गया और उसका सारा शरीर किसी मायावी स्त्री की तरह भयंकर और प्रखर हो गया है।

मैं सहमा हुआ सा खड़ा रहा। मैंने अपनी दृष्टि दूसरी ओर घुमा ली। मैं झोंपड़ी के बाहर चला आया। वह मेरे पीछे तेज कदम उठाती हुई आई और मेरे पाँव पकड़कर बोली "आप बुरा मत मानिए। मैंने जो भी किया है वह आपकी भलाई के लिए किया है। आखिर आपने अपने बापू की कसम खाई है। अगर उन्हें कुछ हो गया तो सारा दोष मुझ अभागिन का ही कहलाएगा। लोग मेरे पीहर वालों को कोसेंगे और मेरी जवानी को न मालूम कितनी गंदी बातों से सजाएँगे। आप मेरी बात के मर्म को समझिए। मुझे दोष मत दीजिए।" कहकर वह रोने लगी। उसकी आँखों से आँसुओं की धार अनवरत करके बहने लगी। चेहरा करुणा से भीग गया।

मेरी वासना मर चुकी थी। जो बवण्डर थोड़ी देर पहले आया था वह चला गया था। पर मेरा अहम् अपने अपराध को स्वीकार करना नहीं चाहता था। मैं हार कर भी अजेय बनना चाहता था। सो उसे झिड़कते हुए बोला "तू मेरी आँखों से दूर हो जा।"

वह बेचारी उदास सी अश्रु बहाती चली गई।

कितनी दृढ़-प्रतिज्ञ हो गई है मेरी शालिनी। मैं आज उसके समक्ष नत-मस्तक हूँ।

हमारा दल अपने विरोधी अखाड़े में पहुँच गया। मेरे कन्धे पर लाल लंगोटा और लाल कच्छी पड़ी थी। हमारे साथ ढोल-बाजा बजाने

छोटे पहलवान थे। मैंने आते ही तमाम अखाड़े में दृष्टि दौड़ाई। सामने जीता खड़ा था। हम दोनों की आँखें टकराईं। आँखें टकराते ही हमारे भीतर का पहलवान जाग उठा। मैंने सीना फुलाकर अंगड़ाई ली। उसने भी उसका जवाब दिया।

फिर कुश्तियाँ शुरू हो गईं। मैं अखाड़े की बनी कच्ची मिट्टी से लिपी छोटी गद्दी पर बैठा था। मेरे ठीक सामने जीता बैठा था। वह अपनी मूँछों पर बार-बार ताव दे रहा था। मैंने भी अपनी मूँछों पर ताव देना शुरू किया। हालाँकि मेरी दोनों मूँछें बहुत कम गहरी और भारी थीं। किन्तु भला हो जोयसे नाई का जो उसने उस्तरे से बार-बार मेरी दाढ़ी मूँछें काट-काट कर उन्हें कुछ गहरा बना ही दिया। ठोड़ी पर दाढ़ी और हल्की मूँछें आने लग ही गईं।

कुश्तियाँ होती रहीं। कभी मैं पहलवानों और कभी मैं जीता को देखता था। हमारे अखाड़े के गुरु ने अन्तिम कुश्ती मारी। विजयोल्लास में हम तालियाँ पीट-पीटकर पागलों की तरह चिल्लाने लगे।

तभी जीता ने बड़ी नाटकीयता से मेरा हाथ पकड़ लिया और मुझे उसने ललकारा।

कृपा महाराज ने बीच में आकर कहा "अब अपने दल की हार को खार (द्वेष) में मत बदलो।"

किशन महाराज लपककर आए, "क्या बात है जीता ?

जीता ने अपनी जाँघ पर थापी लगाकर, बन्दर की तरह उछलकर मुझे ललकारा "मैं सरवण से कुश्ती लड़ना चाहता हूँ। मैं उसे बकारता (ललकारता) हूँ।"

कृपा महाराज बड़े शांत प्रकृति के व्यक्ति थे। उन्होंने उसे समझाते हुए कहा "तुम दोनों की कुश्ती दीवाली के बाद होनी तय है फिर क्यों अभी बखेड़ा खड़ा कर रहे हो। जीता धीरज रख।"

जीता इस तरह उछल रहा था जिस तरह रावण को पीटने के समय बजरंगबली नाचे थे। वह दहाड़ कर बोला "एक लड़न्त अभी और

इसी वक्त होगी ।"

गुरु महाराज ने मेरी ओर देखा । मैंने अपने अन्तस की भावना को दबाते हुए कहा 'एक क्यों दो दंगल हो जाएँ ।"

हालाँकि मुझे अपने पर पूर्ण-रूप से विश्वास नहीं था, फिर भी आत्म-सम्मान और स्वाभिमान ने मुझे इस तरह ललकारने के लिए विवश कर दिया ।

देखते-देखते अखाड़ा खाली हो गया । मैं और चीता लंगोटे और कच्छिए पहनने लगे । दोनों पहनकर तैयार हुए । मैंने झपककर आठ-दस बैठकें और दस-बीस दंड निकाले । एक बार मैंने तमाम उपस्थिति की ओर देखा । गुरुजी के चरण-स्पर्श किए । हनुमान जी की आराधना की और जय बजरंग के जयघोष के साथ अखाड़े में कूदा । उधर चीता भी उतरा । वह मुझसे ड्योढ़ा दिख रहा था । उसकी आकृति बड़ी डरावनी लग रही थी ।

दोनों ने अखाड़े की धूल ली ।

भिड़ पड़े ।

हमारे उलझते भिड़ते पड़ते हाथ-पाँव चटापट-पटापट की ध्वनियाँ कर रहे थे ।

लोग—'वाह-वाह' 'क्या कहने हैं' 'शाबाश चीता' 'कमाल है सरवण' कह रहे थे ।

और हम दोनों खूँखार भेड़ियों की तरह लड़ रहे थे । कभी वह नीचे और कभी मैं नीचे । जोर की आपसी टकराहटों से हमारे मुखों से खून छलकने लगा । आधा घण्टे तक कुश्ती होती रही । अन्त में 'बराबरी' पर फैसला हो गया ।

वही जयघोष ।

वे ही तालियाँ ।

लोगों ने चीता को फटकारा । क्योंकि वह मुझसे शरीर में दुगुना दिखलाई पड़ रहा था । वह मुझे लेकर हजारों तरह की शेखियाँ मार

ुका था।

कुश्ती बराबर रही पर पलड़ा मेरा भारी रहा। सभी लोगों ने मुझे ही शाबाशी दी। एक तरह की यह चीता की हार ही थी।

मेरी कुश्ती की खबर पिता जी को पहुँच गई।

पिता जी भागे भागे आए। कुश्ती खतम हो चुकी थी। लोगों ने उन्हें खूब बधाई दी और विशेषकर मेरे लड़ने के ढंग की उन्होंने खूब प्रशंसा की।

पिता जी ने मुझे गोद में उठा लिया।

हम लोग घर आए। हमारे साथ गुरू महाराज भी थे। गुरू महाराज ने बैठते ही कहा 'सरवण चीता के दाँतों से मछली की तरह 'सर-सर' निकल रहा था।

पिताजी ने गर्व से मेरी ओर देखा।

दूध-घी सभी पहलवानों को पिता जी ने अपनी ओर से पिलाया। काफी रात तक हमारी यह गोष्ठी चलती रही। सभी का यह विश्वास था कि दीवाली के बाद मैं चीता को पाँच मिनट में चित्त मारूँगा। मैं मदमस्त था—उस समय।

गुरू महाराज ने उठते हुए कहा "किन्तु चौधरी यह सब सच्चे लँगोट पर निर्भर करता है। बिना ब्रह्मचर्य के कुश्ती नहीं लड़ी जाती। चीता का क्या शरीर है? देखने भाला बकरा जाय पर है थोथा। लँगोट का सच्चा बिलकुल नहीं है। इधर उधर मुँह मारता फिरता है। देखो आज कितनी बड़ी बेइज्जती हुई।"

पिताजी अपनी मूँछों पर ताव देकर बोले "मेरे बेटे ने मेरी सौगन्ध वा रखी है महाराज।"

इस घटना के बाद पिताजी मुझसे बहुत प्रसन्न रहने लगे। बहू के प्रति वे अभी भी पूर्ववत् उदासीन थे।

× × ×

झाँझा चली गयी थी।

कभी-कभार उसका प्रेम में तपा हुआ आजकल्प मुख मेरी दृष्टि के सम्मुख नाच जाता था। तब मैं उसके घर की ओर चल पड़ता था। उसके घर में अब दूसरे लोग रहते थे पर वे उस पेड़ के प्रति किंचित भी लापरवाह नहीं थे। पेड़ की शाखायें विरह के हजारों हाथों की तरह फैल रही थीं।

मुझे भावाभिभूत खड़ा देखकर नयी मालिन ने पूछा "क्या देख रहे हो भाई?"

"कुछ नहीं।"

"समझी इस पेड़ को देख रहे हो। यह झाँझा की आत्मा है। इसकी सार-सँभाल करना हमारा धर्म है। जाते-जाते कहा था इसके सूखने के साथ-साथ मेरे शरीर का सारा रक्त सूख जायेगा। यह पेड़ उसे अपने प्राणों से भी प्यारा है।"

मैं वहाँ से पिघला पिघला सा चला आता।

प्रेम की विचित्र कहानियाँ सुनी थीं। विचित्र हैं प्यार करनेवाले। उन विचित्र प्यार के दीवानों में झाँझा भी एक थी। छोटी जाति की (जिसे हमारे गाँव में डूम कहते हैं) उस युवती की प्रेम-तपस्या वास्तव में अनुकरणीय थी। लोकनायिका 'मूमल' की तरह वह प्रीतम की याद में झुर-झुर कर पिंजर हो रही थी।

इस संसार में कोई किसी के अन्तस के मर्म को नहीं जानता। सब सतही तौर पर सत्य को खोजते हैं।

झाँझा की चर्चा कभी-कभी मैं मालिनी से करता था। वर्षों से उसकी

प्रशंसा करता था "जानती है तू, वह वैसी है। उसने भैया के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। ऐसा त्याग इस कलिकाल में भी कहाँ ?"

पर सावित्री को वही प्रशंसा बहुत अच्छी लगती थी जिसमें हल्के गंभीर रूप में उसका अपना प्रसंग आता रहे। किसी की वह एकांगी प्रशंसा लगातार नहीं सुन सकती थी। जब मैं सीता की तारीफ करता ही जाता तब वह झुंझला जाती थी और कहती थी "उसका त्याग राम के बाद का है। मैं आपको एक ऐसी लड़की बता सकती हूँ जिसने राम की झलक भी नहीं देखी। पूरा जीवन वैधव्य की आग में झुलसा कर रख दिया। किंतु अपने प्रिय की याद को नहीं भूली।

"और तू ?" एक ऐसा प्रश्न मेरी आँखों में चमकता कि वह सिहर जाती। मेरे मुँह पर हाथ रखकर वह अपलक देखती। दुःख से उसका मुख स्याह हो जाता और गहरी व्यथा में डूबे स्वर में कहती "ऐसी बात मुख से मत निकालिये। मैं काशी पार डूब जाऊँगी। इतने बड़े संसार में मुझे मीठे बोल बोलने वाला भी नहीं रहेगा।"

तब उसकी आँखें सजल हो जातीं।

इस बीच कई बार मुझे सीता मिला था। अब उसके मन में मेरी भक्ति को लेकर ठंड घुस गयी। मैंने वास्तव में अपनी शाक्त को पूरी तरह से बढ़ाना शुरू कर दिया। सावित्री भी अब मुझे कुछ गर्व से देखने लग गयी थी।

उस दिन दोपहर से ही बादल आसमान पर छा रहे थे। कभी-कभी धूप में कोई मेघ-खंड बूँदें बरसा जाता था। हरे-भरे खेतों के आमगरों के बैठे मुण्ड-के-मुण्ड रूप में तालियाँ बजा-बजा कर गा रहे थे।

तावड़िये में मेह बरसे

भूरा-भुरती परनीजे।

कैसे लोक विश्वास हैं !

धूप में पानी बरसेगा और भूरा भुरती का विवाह होगा। बचपन

बरसै बल चौमासे में क्यारी भरी बधावी रे
मला तू तो विरह वाली रे
इस रितु में मत जा बालम
परदेसा रवाणी रे"

उसका माधुर्य से भीगा स्वर गूंजता रहा और मैं चला आया। उसने अपना गाना-बजाना बन्द करके कहा "पावसा महीं का घर में जोरू जोरदार और पिया नहीं है दिलदार।"

वह चली गयी। बीरा के खेत में घुस गयी। बीरा उससे बड़ी देर तक गीत सुनता रहा। उसे खेत के बाहर तक पहुँचाने आया और मुझे देखकर बोला "अरी ओ साहिरा हनुमान बाबा की जय तो बोल।"

उसने ढोलकी पर थाप देकर कहा "हनुमान जी की जय। यह ध्यान मेरे ब्रह्मचर्य व्रत पर था।

बीरा ने फिर उसे कहा, मेरे घर 'बधावा' के गीत शुरू हो गये हैं। तुम साहिरा मुझे ही चार गीत गाने हैं।

"अरे मेरे राजा! तू चिंता न कर, सारे गीत मैं ही गाऊँगी। घोड़ चढ़ी बना धुन धुन नाम[1] दाई[2] बधावणा[3] सभी गीत मैं ही गाऊँगी। ऐसा गाऊँगी कि लोग खाना-पीना भूल जायेंगे। अच्छा चलती हूँ।

वह चली गयी। मैं उदास हो गया।

साँझ पड़ी।

मैं घर पहुँचा। आजकल मैं प्रायः खेत में ही सोता था। यहाँ मन के खिलने की कम गुंजाइश रहती थी। पर आज साहिरा के जाने के बाद न मालूम क्यों मन भारी भारी हो उठा। बदन में टूटन सी व्याप्त हो गयी। घर आया। आकर खाट पर सो गया।

माँ ने पूछा "क्या बात है छगना?"

---

१ दाई २ बधावणा ३ घोड़ लोक गीतों के नाम

"सिर में दर्द है।"

पिताजी चिंतित हो गये। वैद्य जी को भाग कर बुला लाये। वैद्य जी ने नाड़ी का अवलोकन किया। अपने ललाट पर बल डाल कर कहा "तबीयत भारी है केवल। खेत की सील भरी मिट्टी का यह असर है। आज इसे छप्पर के नीचे सुला दिया जाय। धनिया मिसरी की उकाली पिला दी जाय।"

मुझे मेड़ी में सुला दिया गया।

भोजन के लिए कहा गया। मैंने 'ना' कहदी।

मैं उदास पड़ा रहा। कब नींद आयी मैं नहीं जानता रात को मुझे सपना आया था। मैंने सावित्री को देखा था सपने में बस मेरी तबीयत और खराब हो गयी। पिताजी की चिन्ता बढ़ी और रह रह कर मेरे मस्तिष्क में सावित्री का चित्र उभर कर गहरा होता गया।

मेरे तन की टूटन बढ़ गयी। अंग-अंग में एक विचित्र आलस्य भर आया। सावित्री को देखकर मुझमें एक अजीब झुरझुरी छूटती थी। लाख मन को रोकने के बावजूद भी इच्छा होती थी कि मैं सावित्री की गोदी में अपना अस्तित्व खो दूं।

पिताजी निश्चिंत थे। वह अपने बेटे को इतना गिरा हुआ नहीं समझते थे कि वह 'उनकी कसम' के बाद भी पतन के गढ्ढे में गिरेगा। किन्तु उनका बेटा माने में उस प्रिय योग-पीड़ा से व्याप्त हो उठा। मुझे कोई भी चीज अच्छी नहीं लगती थी। हर गतिविधि में मुझे एक उदासीनता नजर आती थी। मैं अन्तस की अनुभूतियों की अदृश्य आग में जल-जला सा जा रहा था।

मुझे आज भी अच्छी तरह से याद है कि माँ ने मुझे दुलार कर पूछा था "क्या बात है सरवण आज तू बड़ा बेचैन दिख रहा है।"

मेरा मन विह्वलता से भर आया और आँखों के छोर भीग से गये। अन्यमनस्कता से बोला "कुछ नहीं माँ।"

माँ को इससे संतोष नहीं हुआ था। वह बार-बार मुझसे पूछती

बरसै बस चौमसे में अंधारी घड़ी बनाणी रे
मजा धूँ तो दिल बाली रे
इस रितु में मन का बालम
परदेसा रमामी रे"

उसका माधुर्य से भीगा स्वर गूँजता रहा और मैं बंधा आया। उसने अपना गाना-बजाना बन्द करके कहा "अपना कहीं का घर में ढोल ओरबार और पिया नहीं है दिलदार।"

वह चली गयी। खीता के खेत में घुस गयी। खीता उससे बड़ी देर तक गीत सुनता रहा। उसे खेत के बाहर तक पहुँचाने आया और मुझे देखकर बोला "अरी ओ साहिरा हनुमान बाबा की कसम तो बोल।"

उसने ढोलकी पर थाप देकर कहा 'हनुमान जी की कसम।" यह व्यंग्य मेरे ब्रह्मचर्य व्रत पर था।

खीता ने फिर उसे कहा मेरे घर 'बधावा' के गीत शुरू हो गये हैं। तुम साहिरा मुझे ही सारे गीत गाने हैं।

"अरे मेरे राजा! तू चिंता न कर, सारे गीत म ही गाऊँगी। पीड़[3] घर्स बस सुख सुख आव' दाई[1] बधावड़ा[2] सभी गीत में ही गाऊँगी। ऐसा गाऊँगी कि लोग खाना-पीना भूल जायेंगे। अच्छा चलती हूँ।"

वह चली गयी। मैं उदास हो गया।

सांझ पड़ी।

म घर पहुँचा। आजकल म प्राय खेत में ही सोता था। यहाँ मन के छिपने की कम गुंजाइश रहती थी। पर आज साहिरा के जाने के बाद न मालूम क्यों मन भारी भारी हो उठा। बदन में टूटन सी व्याप्त हो गयी। घर आया। आकर खाट पर सो गया।

माँ ने पूछा "क्या बात है सरवण?"

---

१ दाई २ बधावड़ा ३ पीड़ लोक गीतों के नाम

"सिर में दर्द है।"

पिताजी चिंतित हो गये। वैद्य जी को भाग कर बुला लाये। वैद्य जी ने नाड़ी का अवलोकन किया। अपने ललाट पर बल डाल कर कहा "तबीयत भारी है केवल। खेत की लीक भरी मिट्टी का यह असर है। आज इसे घरमें के नीचे सुला दिया जाय। बनिया मिसरी की ठन्डाई पिला दी जाय।"

मुझे मेड़ी में सुला दिया गया।

भोजन के लिए कहा गया। मैंने 'ना' कहदी।

मैं उदास पड़ा रहा। कब नींद आयी मैं नहीं जानता रात को मुझे सपना आया था। मैंने सावित्री को देखा था सपने में बस मेरी तबीयत और खराब हो गयी। पिताजी की चिन्ता बढ़ी और रह रह कर मेरे मस्तिष्क में सावित्री का चित्र उभर कर गहरा होता गया।

मेरे तन की टूटन बढ़ गयी। अंग अंग में एक विचित्र आलस्य भर आया। सावित्री को देखकर मुझमें एक अजीब झुरझुरी छूटती थी। लाख मन को रोकने के बावजूद भी इच्छा होती थी कि मैं सावित्री की गोदमें में अपना अस्तित्व खो दूं।

पिताजी निश्चिन्त थे। वह अपने बेटे को इतना गिरा हुआ नहीं समझते थे कि वह 'उनकी कसम' के बाद भी पतन के गड्ढ में गिरेगा। किन्तु उनका बेटा आगे से उस दिन मौन-पीड़ा से अवश हो उठा। मुझे कोई भी चीज अच्छी नहीं लगती थी। हर गतिविधि में मुझ एक उदासीनता नजर आती थी। मैं अज्ञात की अनुभूतियों की रहस्य आग में जल-जला सा जा रहा था।

मुझे आज भी अच्छी तरह से याद है कि माँ ने मुझ दुलार कर पूछा था "क्या बात है सरवरा आज तू बड़ा बेचैन दिख रहा है।"

मेरा मन विह्वलता से भर आया और आँखों के कोर भीग से गये। अस्पष्टस्वरता से बोला "कुछ नहीं माँ।"

माँ को इससे संतोष नहीं हुआ था। वह बार-बार मुझसे पूछती

रही और मैं उसे टालता रहा।

आज दिन भर पिताजी घर में नहीं थे। वह शहर में चले गये थे। मेरे चचेरे भाई ने आकर मुझे बताया था 'मोठ सिंह को कांग्रेस-टिकट नहीं मिलेगा। उससे कोई भी व्यक्ति संतुष्ट नहीं है। और इस बात की चर्चा गर्म है कि काका को इस बार टिकट मिलेगा। काका इसीलिए कांग्रेस के जिलाध्यक्ष से मिलने के लिए शहर गये हुए हैं। सुना है कि वह कांग्रेस हाई कमान में बड़ा दबदबा रखते हैं।"

पिताजी के साथ सुलेमान भी गया था। सुलेमान की इच्छा थी कि मेरे पिताजी को खुद चुनाव में खड़ा होना चाहिये। सारे मुसलमान उन्हें ही वोट देंगे। बापू जैसा सच्चा और कर्मठ इन्सान गाँव भर में नहीं है।

माँ को पिताजी की आज की अनुपस्थिति अच्छी नहीं लगी। वह मेरी उदासी के साथ बड़बड़ा उठती थीं "छोरे को इस दशा में छोड़कर शहर गये हैं। वैसे हरदम सरवरा-सरवरा की रट लगाये रखेंगे और मुट्ठियों भर भर कर बधाई करेंगे और जब सरवरा की तबीयत खराब हो गयी तब आप चलते बने लम्बा हेला (पुकार) थोथी प्रीत।"

मैंने माँ को सांत्वना दी "तुम्हें इस तरह बेचैन नहीं होना चाहिए। वैद्य जी ने कहा था न तबीयत भारी है ठीक हो जायेगी।"

माँ जब लोटा लेकर जंगल की ओर गयी तब सावित्री मेरे पास आयी। मेरे पायताने बैठकर मेरे पाँवों को धीमे-धीमे दबाती हुई बोली

"कैसा है जी?"

"अच्छा है।

आज बहुत उदास लगते हैं।"

मैं उसे अपने पास बुलाना चाहता था। इसलिये आँखों को मूँद कर बोला "सिर में बड़ा दर्द है।"

वह उठकर मेरे सिरहाने बैठ गयी। अपनी हथेली से मेरा सिर दबाने लगी।

मेरे अंग-अंग में उत्तेजना भर उठी। मैं उसके मुख को देखता

रहा। देखते-देखते मैंने उसे पागल की तरह अपनी बाँहों में भर लिया। उसके कपोलों पर चुम्बनों की वर्षा कर दी।

और वह आहत साँपिन की तरह अपने पल्लू का फटकारा देती हुई उठ खड़ी हुई। मैंने उसका हाथ कसके पकड़ लिया।

उसने अपना हाथ छुड़ाने की चेष्टा की। वह नहीं छूटा। अब मेरा हाथ भी इतना कमजोर नहीं था। उसने उसे जकड़े रखा। वह गुस्सीले स्वर में बोली "आपको लाज नहीं आती। छोड़िये मुझे।"

मैंने उसका हाथ नहीं छोड़ा। उठकर उसे अपनी बाँहों में फिर भरना चाहा। मैं बहुत उत्तेजित हो गया था।

वह बाहर की ओर लपकती हुई बोली "छिः छिः आप कैसे हैं? आप भी सौगन्ध को मिसरी की तरह घोल कर पी जाना चाहते हैं।"

किसी ने मेरे कलेजे पर हथौड़ा मार दिया हो ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। मेरा शरीर शिथिल पड़ गया और मैं टूट कर खाट पर पड़ गया। मेरे सिर में एक अजीब झनझनाहट थी।

ओह! मैं वासना में अन्धा हो गया था। अभी क्या कर बैठता? पश्चाताप की आग इतनी प्रखर और प्रबल रूप से मुझे जलाने लगी कि मैं रो पड़ा।

इस आतुरता का प्रभाव थोड़े क्षण ही रहा। मन सुन्दर होने लगा। वासना की आग फिर रोम-रोम में धधककर मुझे विवश करने लगी।

माँ ने मुझे खाने के लिए कहा। हालाँकि मुझे बड़ी भूख थी पर मैंने खाना नहीं खाया। सावित्री दूध लेकर आयी। उसे देख कर मेरे मन की दशा एक घिरे हुए श्मशान की तरह हो गयी। उसने मुझे प्यार से दूध पीने का अनुरोध किया पर मैंने जलते हुए स्वर में उत्तर दिया, "मुझे नहीं चाहिए दूध-धूध।"

उसने संयत स्वर में कहा "थोड़ा सा पी लीजिये न।"

"कह दिया न मुझे एक बूँद भी नहीं पीना है।"

वह बेचारी मुँह उतार कर चली गयी ।

थोड़ी देर में सन्नाटे को चीरती हुई लोक-गीत की पंक्तियाँ सुनायी पड़ रही थीं—

"नेड़ी तो नौकरी करजो पिया चाकरी की
सांझ पड़्यां घर आय जाजो गोरी रा बलमा जी ।"[1]

गीत स्त्री का था पर गा रहा था कोई मर्द ।

तभी बाहर से सुलेमान काका की आवाज सुनायी पड़ी 'सरवण ओ सरवण ।

मैं उठता उसके पहले ही माँ उसके पास पहुँच गयी । माँ को देखते सुलेमान ने कहा "राम-राम भौजाई सा ।

"जीता रह । बूढ़ा-डोकरा हो । बहू को बड़ा सुख दे ।"

आशीर्वाद देने के मामले में मेरी माँ बड़ी उदार है ।

"भौजाई, आज चौधरी काका शहर में ही रहेंगे । कल संध्या तक आयेंगे ।

"क्यों ?"

"कोई खास काम आ गया है । भौजाई जी इस बार अपना धूंसा (नगाड़ा) ही बजेगा ।'

"मतलब ।

"काका को टिकट जरूर मिलेगा ।

माँ के हाथ में लालटेन थी । उसकी जोत को वह ठीक करती हुई बोली "तेरे काका को भी बैठे-बिठाये क्या उल्टी-सुल्टी सूझती रहती है राम जाने ।

"राम क्या जाने सारा शहर जानेगा । इस बार काका जीत गया तो हरखुख की नाक कट जायेगी ।

सुलेमान चला गया ।

---

१ पिया बहुत समीप नौकरी करना है ताकि सांझ के साथ आप वापस घर आ जावें ।

माँ मेरे पास आकर बैठ कर से बोली "तेरे बापू को भी क्या सूझती है ? अब टिकट लेंगे चुनाव लड़ेंगे। राजा बनेंगे। छि।"

मैंने माँ को समझाया कि ये सारी बातें तेरी समझ में नहीं आयेंगी। माँ कुछ बड़बड़ाती हुई चली गयी।

घर का सारा काम पूर्ववत चलता रहा।

आज मुझे पिताजी की अनुपस्थिति अच्छी लगी जैसे मेरी कुप्र वृत्तियों को प्रोत्साहन मिलने का अवसर मिल गया हो। फिर वही भाव नाएँ मुझे संतप्त करने लगीं। रह रह कर मेरा बदन टूटने लगा। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मेरे सिर पर बड़ा भारी बोझ पड़ा है। मैं आँख मूँद कर पड़ा रहा।

सप्तऋषि मंडल आकाश में चमक रहा था।

आकाश-गंगा अपने पूरे यौवन पर थी।

मुझे नींद नहीं आ रही थी। यों ही ऊलजलूल उलझनों में उलझता रहा। तारे गिनता रहा। अपने मन को सावित्री के ध्यान से हटाना चाहा पर मन आज मुझसे विद्रोह करने के लिए तैयार हो गया था। आज उसने मुझसे असहयोग करने की ठान ली थी। बार-बार सावित्री का साँचे में ढला हुआ शरीर मेरे सम्मुख नाच जाता था।

मैं व्यग्र होकर टहलने लगा।

टहलता रहा। चाँदनी बाहर मीन-मीन गा रही थी। धुँधला हुआ समस्त वातावरण था। दूर-दूर खेत के पास पास चमकती रेत सूनी सिसकियाँ सी भर रही थी। मैं उन्हें देखता रहा।

आधी रात हो गयी।

आँगन में सावित्री सोयी हुई थी। आँगन के बाहर दरवाजे के आगे माँ खुर्राटे भर रही थी। माँ के खुर्राटे कभी-कभी बहुत ही तेज हो जाते थे।

मैं अतृप्त आँखों से अलसायी हुई बेल की तरह सोयी सावित्री को देखता रहा। चाँदनी उसके पूरे शरीर को ढँके हुए थी। मैं वासना से

अंधा हो गया। मुझे मेरे पिता की सौगन्ध नहीं रोक सकी। सौगन्ध जैसी अन्ध आस्था के पीछे छिपे ही अमंगल थे मैं उन सबको भूल गया। मेरे समक्ष एक तस्वीर थी सोयी हुई सावित्री की।

मैं उठा। दबे पाँव चला। रह-रहकर मैं शंका से काँप जाता था कि माँ उठ न जाय माँ जाग न जाय? मैं आखिर सावित्री के पास पहुँच गया।

सावित्री गहरी नींद में थी।

मैंने उसके भाल पर हाथ रखा। वह मुस्करा पड़ी जैसे छोटे बच्चे नींद में मुस्कराते हैं। मैं कुछ देर तक विमूढ़ सा बैठा रहा। मन में दुर्धर्ष संघर्ष चलने लगा।—वासना और पिता की सौगन्ध का। मैं काँप उठा। मुझे लगा कि पिता की सौगन्ध तोड़ते ही वह मर जायेंगे।

तब मुझे बचपन की एक बात सहसा याद हो आयी।

जब हम खेलते थे और हम से कोई बदमाशी हो जाती थी। फल स्वरूप उसकी पुनरावृत्ति न होने के बदले हमको किसी न किसी देवता की कसम दिला देते थे। हमें बड़े संकट का सामना करना पड़ता था और हमें अपनी इच्छाओं के विपरीत चलना पड़ता था।

तब प्रत्येक लड़का दूसरे लड़के से कहता—

थूके माथे ककड़ी
थारी सौगन उतरी।[1]

उस दिन जैसे मैं बच्चा हो गया था। नैतिक पराजय से मैं टूटकर बिखर गया था। नादान बच्चों की तरह मैंने मौन-स्वर में कहा—

थूके माथे कूकड़ी
बापू री सौगन उतरी।

यह एक झूठी दिलासा थी। आधारहीन बात। पर मुझे एक बहाना चाहिये था। आखिर वह बहाना मिल गया और मैंने पास जाकर सावित्री को धीरे से झिंझोड़ा।

---

१ थूके पर मुर्गी है और तेरी कसम उतर गयी है।

सावित्री हड़बड़ा कर उठी। उसकी आँखों में भय-मिश्रित विस्मय तैर उठा और उसके चेहरे पर जड़ता की भावना गहरे रूप में झलकने लगी। मैंने उसे ऐसी असीम करुणा से देखा जैसे मैं कोई फाँसी की सजा पाया हुआ इन्सान हूँ और अन्तिम बार अपनी पत्नी से मिलने के लिए आया हूँ। सच मेरी उस मुद्रा ने उसे सिहरा दिया। हम वहाँ से ऊपर चल आए।

वह विगलित स्वर में बोली "क्या हो गया है आपको?"

मुझ में बोलने की शक्ति नहीं रही। जैसे पत्थर की भयानक जड़ता ने मुझ में ऐसी जड़ता ला दी थी जिसने मुझे एक तरह से पशु बना दिया। मैं उसे पूर्ववत् करुणा से देखता रहा।

"ऐसा काम आपको नहीं करना चाहिये। यह ईश्वर के प्रति छल है। इससे ईश्वर हमसे नाराज हो जायेगा और हम कठोर दंड भोगना पड़ेगा। हम पाप के कुएँ में गिर जायेंगे।

उसका स्वर ममता भरा था और वह मुझे इस तरह कह रही थी जैसे कोई पुजारिन उपदेश देती हो। तब मुझे हम दोनों के आयु भेद का ज्ञान हुआ। लेकिन उस समय सभी बातें मेरे लिए गौण थीं। मुझमें एक नशा सा छाया हुआ था।

मैंने हकलाते हुए कहा "मैं मैं ।"

उसने विनती भरे स्वर में कहा "आप ऐसा अधर्म मत कीजिये। कहीं ससुर जी को कुछ हो गया हो तो?

"कुछ नहीं होगा।" और मैंने एक बालक की तरह कहा "तू मेरी सौगन्ध उतार दे।"

"कैसे?" उसके स्वर में आश्चर्य था।

गहरे — दूबें ऊपर दुबकी
आयु की सीमन उतारी।

वह धीरे से हँस पड़ी। जैसे मैं बहुत अबोध व नादान हूँ। मेरे हाथ को पकड़कर उसने मुझे उठने का संकेत किया और बोली "सौगन्ध

वही उबार सकता है जिसकी सौगन्ध खायी जाती है। जाइये और मन को स्वच्छ कर लो जाइये।"

मगर मैंने उसकी एक नहीं सुनी। जब उसने मेरे अनुरोध को नहीं माना तब मैं एकदम बिगड़ा और उसे खरी बखान में भला-बुरा कहा और अपने आपको नाश करने की धमकी दी। मैंने इस वाक्य का भी उच्चारण किया — बाप मर तो जाता रहे पर मैं उसके पीछे नहीं मर सकता। उसकी आँखें फट गयीं फिर आँसुओं से भर आयीं। उसने पराजय स्वीकार करली। वह पराजय उस नारी की विवशता की चरम सीमा थी।

इसके बाद मैं आत्मग्लानि में जलता रहा।

× × ×

रह-रह कर मुझे लगता था कि मैं अन्यायी और अधर्मी हूँ। मैंने अपने बाप की सौगन्ध को तोड़ा है। मैंने अपने बाप से छल किया है।

मैं तब हनुमान जी के मन्दिर गया। उनके नाम 'प्रसाद' बोला — अगर मेरे बापू को कुछ भी नहीं हुआ तो मैं तुम्हें सवा रुपया का प्रसाद चढ़ाऊँगा। चार मंगलवार व्रत रखूँगा।"

इस दुष्कर्म का (बाद में वह मुझे दुष्कर्म ना ही प्रतीत हुआ) मुझ पर बहुत प्रभाव छाया रहा। मैं अपने आपको अपराधी समझने लगा। पिताजी के सम्मुख मैं जाता तो अनायास किसी अव्यक्त शक्ति द्वारा मेरी निगाहें झुका दी जाती और मैं ग्लानि की पीड़ा में जल जाता।

पिताजी बड़े खुश थे। क्योंकि उन्हें निर्वाचन-टिकट मिलने का पूरा

भरोसा हो गया था। अभी चुनाव होने में काफी समय था, पर सिंहजी का उत्साह-उल्लास देख कर लगता था कि चुनाव एक माह बाद ही होने वाला है। अब उन्होंने खेती में ध्यान देना भी कम कर दिया था।

भीमसिंह हताश होकर विद्रोही बन गया।

एक दिन वह सिंहजी के पास आया। तब वे मेरे के पार सिंहजी मुझे बन्दूक चलाने का अभ्यास करा रहे थे। अब मैं निशाना साधने में सधा सकता था। कभी-कभी उड़ते हुए पक्षी को मार देता था।

भीम सिंह ने "जै माताजी की" की।

सिंहजी ने उसका हाथ जोड़ कर स्वागत किया और वे दोनों वहीं मेड़ पर बैठ गये। मैं भी उनके पास बैठ गया।

सिंहजी ने कहा "शस्त्र चलाना हालाँकि हमारा धर्म नहीं है। पर समय ही कुछ ऐसा आ गया है कि आदमी अपने दम पर कायम नहीं रह सकता क्यों भीम सिंह जी ?"

"धर्म तो चौधरी इस पर चढ़ गया है।"

"ऐसी बात नहीं है।" सिंहजी ने गम्भीर होकर, दूर तक फैली हरियाली पर नजर जमाकर कहा "अपना धर्म अपने साथ ही रहेगा। छोटे ठाकुर ! धर्म के बिना पृथ्वी एक पल भी नहीं ठहर सकती। धर्म की धुरी ही इस सारी पृथ्वी का बोझ सँभाल हुए है। अभी कुछ कन्दराओं में बड़े-बड़े मुनि-तपस्वी धर्म की ध्वजा को थामे हुए हैं।"

"कैसी बात करते हो चौधरी ! एक तो तुमने अपना पक्ष रखा ? मुझे टिकट दिलवाने का आश्वासन दिया और गुरु जाकर अपनी सिफारिश कर आये। धर्म रहा ही कहाँ है ?"

"ऐसी बात नहीं है छोटे ठाकुर। दरअसल बात यह है कि हनुमान ने आपके छुटे-भाई जिन्हें बनाकर भगा शासन के कार्यकर्ता को भड़का दिया। वह बड़ा ही दुष्ट प्रकृति का है। "और आप तो जानते ही हो छोटे ठाकुर, वह मेरा दुश्मन है और इसलिए मैंने सिर्फ उसके

विरोध में अपने लिए और लगाया। आपके बीच में कभी भी दीवार नहीं बनता और हरमुख को मैं अपने सामने मूँछ पर ताव लगाते हुए नहीं देख सकता।

"अच्छा यह बात है ?" पीतासिंह को बहुत विस्मय हुआ।

"विश्वास न हो तो सुलेमान को पूछ लो।

बात वहीं पर खत्म हो गयी।

दोनों की बातें खत्म हो रही थी।

इधर बीस दिन बीत गये। मेरा व्यायाम पूर्ववत था। कभी-कभार मैं सावित्री के पास चला जाता था। सावित्री इस बात से बहुत दुखी थी। वह बार अनिष्ट-आशंका से सिहर जाती थी।

आखिर वह अशुभ घड़ी आ ही गयी।

अचानक सावित्री चक्कर खाकर गिर पड़ी। उसे वमन की तरह आने लगी। एक-दो कै भी हुई। माँ घबरा उठी। उसके नीचे की जमीन खिसक गयी।

"यह सब क्या ? उसके मस्तिष्क में यह प्रश्न ज्वालामुखी के अप्रत्याशित उठने वाले 'फूलेशिये' की तरह बाहर निकालने लगा। उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। वह किसे अपने मन की बात कहे।

आखिर बड़े मन्थन के बाद उसने यह निश्चय किया मेरी यह वास्तव में कुलटा है। बाहर दिन आते-जाते इसने किसी। ”

उसके मन में संदेह के बादल उमड़ने लगे और वह व्यर्थ का उन युवकों से सावित्री का सम्बन्ध जोड़ने लगी जो यदा-कदा मेरे घर में आते थे। पर उसकी हिम्मत इस बात का उद्घाटन नहीं कर सकी।

उसने इस रहस्य को छुपाये रखा।

साँझ पड़ी किसी भी तरह सावित्री मेरे पास आयी। मेरे सम्मुख गिड़गिड़ा कर वह बोली "अब क्या होगा ?"

"क्यों ?"

"क्यों ? आपके कर्मों का फल प्रकट हुए बिना अब नहीं रहेगा। मेरा पाँव भारी हो गया है।

"हैं !" मेरी आँखें विस्फारित हो गयीं।

"हाँ। उसने हुताश-स्वर में कहा "और इसका सासूजी को पता भी पड़ गया है। मुझे अन्न की बास और उल्टियाँ होने लगी हैं। और वे सासूजी मुझसे बल लगा कर बात-चीत भी नहीं कर रही हैं। वह समझती हैं कि मैं ।" उसने मुझे हाथ जोड़ दिए। उसकी दृष्टि में दया की भीख थी "आप माँ को कह दीजिये कि सत्य क्या है। नहीं तो बात का बतंगड़ होते देर नहीं लगेगी।"

मेरा सारा शरीर पसीना-पसीना हो गया।

मैंने उसे ढाढ़स बँधाया 'तू चिंता क्यों करती है ? मुझे जब माँ पूछेगी तब मैं सब कुछ बता दूँगा।"

माँ इस बात को दो दिन तक छुपाती रही। उसकी भंगिमा और उसके व्यवहार को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता था मानो वह बात माँ के उदर को 'मरोड़-फन्दा' बना रही है और उसकी मनःस्थिति इसके कारण बड़ी विचित्र हो रही है।

तीसरे दिन उसने सुबह-सुबह मुझसे पूछा 'बेटा तुझे अपनी माँ की सौगन्ध है उस माँ की जिसने तुझे नौ माह तक अपना खून पिलाया है खुद ने ठंड-ताप सहा और तुझे नहीं सहने दिया है उस माँ की सौगन्ध है, कि तू सही-सही बतायेगा।"

मैं चुप रहा।

"बहू के पाँव भारी है।"

। मैंने माँ की ओर एक बार प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। और शर्म से मेरी गर्दन झुक गयी।

"तेरे बापू इसका लहू पी जायेंगे।"

"पर माँ ?"

"बेटा ! तूने अपने बापू की सौगन्ध खा रखी है, फिर क्या"

हमारी सात पीढ़ी में भी ऐसी स्त्री पैदा नहीं हुई, यह बड़ा भारी कलंक है ।"

एक बार अचानक घृणा जिसे हिंसा का पर्यायवाची ही कहूँगा मेरे मन में जागी और मैंने सोचा कि झूठ बोल जाऊँ । बल्कि मेरे मन में यह होनता थी कि मैं उससे छोटा हूँ और वह मुझे समय-असमय तंग करती है । इसलिए इस कलंक को उसके माथे थोप दूँ । जिससे बापू इसे घर से निकाल देंगे और मेरा दूसरा विवाह हो जायेगा । मेरे लिए मेरे लायक बहू आ जायगी ।

इसलिए मैं चुप रहा । माँ ने चुप्पी का अर्थ लगा लिया कि बहू कुलटा है । वह क्रोध में लाल-पीली होकर चली गयी ।

शायद सावित्री ने हमारी बात-चीत को सुन लिया था । इसलिए जैसे पिताजी को उसने देखा । वह मेरे पास आयी और बोली "आपने माँ को सच-सच क्यों नहीं बताया ?"

"क्या ?"

"कि पेट आपसे रहा है ।"

"कह दूँगा । तुम्हें किस बात की उतावल है । आखिर मुझे भी यह सब कहते लाज आती है ।"

मैंने अपना वाक्य समाप्त किया ही था कि पिताजी ने गर्ज कर कहा "मारवाए मरवाए !"

"क्या है ?"

"मैं तुम दोनों की बातें सुन चुका हूँ । अरी ओ डरपोक की माँ अपने इस कमीने की हरकत देख इसने मेरी सौगन्ध खायी थी । इसने मेरी सौगन्ध खायी थी ।" पिताजी पागलों की तरह चीख पड़े ।

"क्या बात है ? आप इस तरह क्यों चीख रहे हैं ।"

"देखो अपने बेटे की करतूत ।"

"क्या ?"

"तेरी बहू ?"

"मेरे बेटे की नहीं यह उसके किसी ।"

पिताजी चीख पड़े "हरामी की माँ ! ज़बान को लगाम दो । बहू पर लांछन न लगा कर अपने इस नालायक गंजेड़ी और दुष्ट बेटे को फिटकारो इस कमीन ने यह नहीं सोचा कि मेरा बाप मर जायगा ? क्या तू समझती है कि सौगन्ध का कोई असर नहीं होगा ?

"आप पहले मेरी पूरी बात सुनिये ।"

"मैं सुन चुका । ओ हत्यारे तूने मुझे पहले क्यों नहीं कहा । नीच पापी !" और पिताजी ने मुझे घूँसों से पीटना शुरू कर दिया ।

मैं पत्थर की तरह खड़ा हुआ मार खाता रहा । पिताजी मुझे मारते मारते इतने उत्तेजित हो गये कि वह स्वयं अपने को पीटने लगे । माँ ने मुझे धक्के देकर बाहर निकाल दिया । जैसा कि सदा होता आया है । माँ ने मेरा ही पक्ष लिया और वह सावित्री को कोसने लगी ।

मैं उसी क्षण घर से बाहर निकल गया ।

पागल की तरह घूमता रहा—खेतों और सूनी पगडंडियों पर । रात के टीलों की निर्जनता में मैंने कई बार आँसू बहाये । मेरी आत्मा स्वयं मुझे कचोटने लगी । अन्तस की ध्वनियाँ समवेत स्वर में चिल्लाईं "तू अपराधी है । तूने सौगन्ध तोड़कर ईश्वर को नाराज कर दिया है । ईश्वर तेरा कोई न कोई अनिष्ट अवश्य करेगा । उसकी सर्वव्यापी दृष्टि से कोई भी छिप नहीं सकता ।

मैं जैसे अपने संस्कारों से आक्रान्त सा हनुमान जी के मन्दिर की ओर चल पड़ा । मैंने विह्वल होकर अपनी गरदन उसके आगे झुका दी । अश्रुधार बह उठी । मैंने अभ्यर्थना के साथ हनुमान बाबा से कहा "मैं एक वर्ष तक तेरा व्रत रखूँगा प्रसाद चढ़ाऊँगा रात भर तेरी स्तुति में जागरण कराऊँगा ।" मैं वहाँ शरणागत सा पड़ा रहा । अन्ध विश्वासों के प्रति आज मैं स्वतंत्र रूप से सोच सकता हूँ पर उस समय ईश्वर और उसके विभिन्न रूपों व चमत्कारों के प्रति तनिक भी अनास्था करना मेरे बस का रोग नहीं था ।

मैं दिन भर घर नहीं गया । दो-तीन बार मुझे बुलाया भी गया

मैं हड़बड़ा कर उठा ।

बाहर जाकर देखा—

पिताजी सोये हुए थे । मैं उनको देखता रहा । कल्पना करता रहा कि मैंने पिताजी को मार दिया है । यह पिताजी नहीं उनकी लाश है । इनमें प्राण नहीं है ।

लोग मुझे क्या कहेंगे ?

और मुझे लगा कि सारा गाँव मुझे दुत्कार रहा है नीच कमीना और नालायक कह रहा है।

भीड़ ! अपार समूह ।

फटकारें ।

फिर ?

मैं गाँव छोड़कर भाग जाऊँ ।

उस समय न कोई भीड़ थी और न कोई मुझे फटकार ही रहा था । यह सब मेरे बाह्य-अन्तर भावनाओं का भयानक रूप था । मुझे मेरे अन्दर के अन्ध विश्वासों और अपने आपको अपराधी समझने की प्रवृत्ति ने पराजय दे दी । उन्होंने ही मुझे भगा दिया ।

मैं गाँव छोड़कर भाग आया ।

तब मुझे ऐसा लगा कि कोई मुझे पीछे से धकेल रहा है । हजारों आवाजें मुझे भगाने के लिए प्रेरित कर रही हैं । यदि सत्य नहीं था तो फिर मैं एक झपाटे के साथ अपने गाँव को एक कोस दूर कैसे छोड़ आया ? मेरे पाँवों की पिंडलियों में काँटों की चुभन की लकीरें पड़ गयीं । एक दो जगह खून भी रिसने लगा । मैंने ऊबड़-खाबड़ रास्ते की भी परवाह नहीं की । यह सब क्या था ? यह सब किसके आदेश से हुआ ? उस वेग में नहीं जान पाया था, पर आज सब स्पष्ट है ।

यह सब मेरी मन की अपराधी मनोवृत्तियों का ही कारण था । मेरे अचेतन में घुली हुई अनेक पलायनवृत्तियों का आदेश था ।

मैंने पहले विश्राम कर सोचा भी कि मुझे यह नहीं करना चाहिये ?

तब मैंने अपने दिल को समझाया 'पिताजी मेरा मुँह देखना नहीं चाहते और' ?"

उस समय मैं अपने इस वाक्य को पूरा नहीं कर पाया था पर अब कह रहा हूँ कि भागने की प्रवृत्ति के पीछे एक कारण मेरी बीवी की आयु का बड़ा होना और मेरी हीनता का भी था। उसकी असन्तुष्टि भी थी। आत्मग्लानि और पत्नी के प्रति अचेतन में छुपी घृणा भी थी—

मैं शहर चला आया। एक शहर से मैं दूसरे शहर चला गया। तीन दिन लगातार उपवास के बाद मुझे रोटी मिली। मैंने एक सेठ के यहाँ काम कर लिया क्योंकि जब मैं घर से भागा था तब मेरे पास कुछ भी नहीं था—एक फूटी कौड़ी भी नहीं।

मैंने जिस दिन घर छोड़ा उसी दिन सारे गाँव में हलचल मच गयी। लोगों ने मेरी बहुत खोज-बीन की। इधर-उधर ऊँट भगाकर दौड़े। तालाब में डुबकियाँ लगाकर खोजा पर वे सबका असफल रहे। घर में कुहराम मच गया। माँ रो रो कर निढाल हो गयी। मालविका गुमसुम सी बैठी रही। न वह दहाड़ मार कर रो सकती थी और न आँसुओं के गुब्बार को सीने में छुपा सकती थी। अचानक शून्य! गहरा विषाद।

पिताजी के अन्तस में यह भावना गहरी होती गयी कि मैं अब जिन्दा नहीं रहूँगा। सौगन्ध कभी भी झूठी नहीं होती। प्रभु उन पर कोप किये बिना नहीं रहेगा। और वह नींद में भी चौंक पड़ते थे कि मुझे प्रभु अपने पास बुला रहा है। वह रात दिन इसी भय में आक्रान्त रहते थे और विक्षिप्तप्राणी की तरह बार-बार ईश्वर के आगे महान अपराधी की तरह सिर झुकाकर रोया करते थे। लोगों ने उन्हें बहुत समझाया पर पिताजी के हृदय पर कोई असर नहीं हुआ। वह उस अंध विश्वास के पाश में जकड़ते गये और उनकी दशा एक महापापी की तरह हो गयी थी। उन्हें सपने भी भयंकर आने लगे। वह किसी की बात पर विश्वास नहीं करते थे। कुछ प्रचलित दन्त कथायें भी उन्होंने रट ली थी जिनमें इस बात का उल्लेख था कि फलां व्यक्ति ने सौगंध

काफी और बचे बीच में छोड़ देने से उसे कुत्ते की मौत मरना पड़ा।

धीरे धीरे पिताजी का चेहरा इतना पीला और सफेद हो गया कि वह बरसों के बीमार से लगने लगे। उनकी आँखें भीतर की ओर धँस गयीं। झुर्रियाँ गहरी हो गयीं। उनका उभार उनके चेहरे को और विकृत करने लगा। ओझा तांत्रिक और पंडितों ने जादू टोने किये पर सब व्यर्थ।

वस्तुतः भय मनुष्य के अपने हृदय में होता है। अतः बाहरी शक्तियाँ पिताजी के लिए व्यर्थ रहीं और उनकी बीमारी बढ़ती गयी। उनकी चिकित्सा का कोई निदान ढूँढे नहीं मिला।

इधर माँ सावित्री को सताने लगी। वह इन सभी घटनाओं का दोष सावित्री पर मँढ़ रही थी। यह सही भी है कि जोखी जोखिम से न डरे तो बेचारी गरीब के काम कैसे। दुर्बल की कोई दुआ नहीं होती। सो, माँ सावित्री का बात-बात में तानें कसने लगी। उसका खाना-पीना दूभर कर दिया। उसका सोना-बैठना हराम कर दिया।

इस पर कुछ प्रकृति का हरसुख और बीता सारे गाँव में एक ही चर्चा करते रहते थे "साला कायर था भाग गया दिल में कुश्ती के नाम से सर्दी बैठ गयी"

पिताजी को लोग आ-आकर यह सब बातें कहते थे। इससे उनके मन में पीड़ा का भयानक तूफान उठता था।

परिणाम यह निकला कि मेरे भागने के एक डेढ़ माह बाद ही पिता जी अनन्त निद्रा में सो गये। सारे लोगों का यही कहना था कि बाप का हत्यारा उसका अपना बेटा है। बेटे ने बाप को मार दिया।

मौत की घटना भी बड़ी विचित्र तरह से घटी।

पिताजी प्रायः नींद में चौंक पड़ते थे। चूँकि रात दिन वह अपनी मौत के बारे में ही सोचते थे, इसलिए उनके मन में मृत्यु की भावना गहरी होती गयी। बात करते-करते वे बीच में कह देते थे कि अब मैं नहीं बचूँगा। रात मुझे बाल्यावस्था की अवस्था में हनुमान बाबा की

"मैं हूं मीना।" सावित्री कुछ देर चुप रही। आयु मुझसे उम्र में बड़ा था। जब उसने जाने का नाम ही नहीं लिया तब वह मर्यादा तोड़ कर बोली "अनर्गल बोलना मेरा धर्म नहीं है लेकिन आप जाते नहीं इसलिए पूछती हूँ यहाँ आप क्यों आये हैं?

"तू समझी नहीं।

सावित्री तत्काल खड़ी हो गयी। वह झोंपड़ी के बाहर निकलने के लिए आगे बढ़ी "मेरे रास्ते से हट जाइए।"

"नहीं हटूँ तो?"

"मीना जी! अकेली नार देखकर अपने को नाहर मत समझिए। एक झटके में गालों वाले चित्त लाऊँगी। एक मुक्के में बत्तीसी हाथ में रहेगी।"

वह हीं-हीं-हीं करके हँसा। उसकी आँखों में वासना चहक उठी। उसकी हँसी बन्द नहीं हुई। वह पूर्ववत खड़ा रहा।

सावित्री का मन क्षण भर के लिए कांप उठा। उसने अपने हाथ का एक झटका दिया "हट जाइए सामने से वर्ना अनर्थ हो जायेगा।"

"आज अनर्थ करने ही आया हूँ।" उसने बड़े मस्त स्वर में कहा "आज मौज मनाऊँगा। अच्छा किया कि तूने अपने खसम को चला-चला कर भगा दिया। आखिर लोग भी कहते हैं। छोटा रूप बड़ा देस-परदेस? दोनों बराबर ही हैं। और सुन मैं किसी से कहूँगा भी नहीं। तुमसे मेरी आस लग गयी है।"

"बदमाशी का नाम तुमने मेरे सामने नहीं लेने जाना है। आप अपना भला चाहते हैं तो जिस पग आये हैं उसी पग लौट जाइए।" वह गुस्से में बिफर कर बोली।

"मैं आज सोच-समझकर ही आया हूँ।"

मीना वासनाभिभूत होकर आगे बढ़ा। उसके होंठों पर बड़ी कातिल मुस्कान थी।

"आगे बढ़िए, आगे बढ़िए मीनाजी आगे आइए। कुछ अकेली

को देखकर गुस्सा मत करें, चौताजी" "चौताजी।" लेकिन चौता ने उसे बाँहों में समेटना शुरू कर दिया। अब सावित्री क्या करे? चौता उसकी ओर मुँह बढ़ा रहा था कि सावित्री ने जोर का धक्का दिया तथा पलक झपकते समीप पड़ा हँसिया उठाया और सपाक से चौता पर वार कर दिया। चौता की नाक कट गयी। वह 'ओय माँ' कहकर सावित्री पर झपटा पर सावित्री उसके पंजे से बाहर थी।

उसके हाथ में लहू से सना हँसिया था। उसका रूप विकराल और प्रचंड था। उसने गुस्से में तड़पकर कहा "अब आप चले जाइए वर्ना मैं आपकी जान ले लूँगी। मुझे ऐसी-वैसी लुगाई मत समझिए। मैं पतराम चौधरी की बेटी हूँ। कन्धे पर बन्दूक रख कर चलती हूँ। जाइए, चुपचाप चले जाइए।" उसका साँस फूल गया था।

चौता उस तेजस्वी रूप को नहीं सह सका। वह व्याकुल-सा चुपचाप भागा गया और अपने खेत में जाकर बेहोश हो गया। सावित्री का आवेश थोड़ी देर में समाप्त हो गया। उसके समक्ष खून से लथपथ हँसिया पड़ा था। कटी हुई नाक पड़ी थी। भय से उसका सारा खून जम गया। उसे चक्कर-सा आने लगा। वह धम् से वहीं पर बैठ गयी। कुछ पल वह अपने को स्वस्थ करती रही। धीरे धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। सामने कटा नाक देखकर उसकी आत्मा काँप उठी। एक चीख-सी निकली और आँखें थोड़ी देर के लिए पुनः बन्द हो गयीं।

आखिर वह उठी। उसने एक मँजे हुए अपराधी की तरह धूल से हँसिये को साफ किया। उस नाक को कपड़े में लपेट कर अपने खेत के बाहर धरती में गाड़ आयी। आतंकित और भयभीत होकर बैठ गयी। फिर न जाने उसे क्या सूझा कि वह सीधी तूफान गति से अपने घर आ गयी।

उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ था। बार-बार उसके ललाट पर पसीना उभर आता था। रह-रह कर चौंक पड़ती थी। लगता था—"अभी हरगुन बड़ी भीड़ के साथ उसके घर पर हमला करेगा। गुन-

विकराल मूर्ति दीखी थी। सो एक रात उसी डर से भयंकर रूप से आक्रान्त होकर वह खाट से उठ गये और घर की काँटेदार 'बाड़' की ओर चल पड़े।

वह थोड़ी ही दूर गये थे कि उन्हें साँप ने काट लिया। पिता जी इतने विचलित थे कि वे चिल्ला भी न पाये। वहीं पर गिर कर अचेत हो गये। सुबह ही घरवालों को इसकी खबर लगी। मेरा सपना सच हो गया। आज मैं उस घटना पर सोचता हूँ तब लगता है कि वह केवल अंधविश्वास था। उस घटना के साम्य में सिवाय कार्य-कारण के अन्य कुछ नहीं था। कभी दुर्योगवश ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं।

कुछ भी हो गाँव वालों ने मुझे ही उसका हत्यारा बताया।

माँ की वेदना का कोई पार नहीं था। वह सावित्री पर अपना गुस्सा उतारती थी। हालाँकि लोग उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। घृणा भी करते थे। जब वह पानी भरने जाती तब स्त्रियाँ उसकी निंदा करती थीं और कोई-कोई पर-पीड़ात्मक स्वभाव की स्त्री उसे ससुर की हत्यारिन तक भी कह देती थी।

दुःख के सागर में वह एक टूटी नाव सी थी। सब कुछ सहकर भी उसने धैर्य को नहीं छोड़ा। वह मशीन की बनी नारी की तरह काम करती रहती। माँ चाहे उससे बोले अथवा न बोले उसे किसी की भी चिन्ता नहीं थी। वह किसी से कुछ नहीं कहती। दोष देती तो केवल अपनी तकदीर को।

वह अकेली खेत जाती। साँझ ढले तक वह उसमें काम करती। सहयोग दिया मेरे चचेरे भाई गोपी ने। वह एक भोला भाला और मर[illegible] था। वह रात को खेत में सोता भी था।

५ दिन दोपहर की बात है।

सावित्री खेत में अकेली बैठी थी। काम पक गया था। वह माँ से आज लड़कर आयी थी। "आखिर मैंने कौन सा अपराध किया है? सासू जी आखिर बार-बार मुझे क्यों उल्टी-सीधी सुनाती है। यह

अत्याचार-अन्याय क्यों ?"

माँ ने उससे कहा "तू बड़ी अशुभ है। तेरे कारण मेरा सुहाग और गोद दोनों उजड़ गये।"

सावित्री भी बिगड़ कर बोली "मैंने इस घर में आकर सुख की साँस भी नहीं ली। हर घड़ी कोई-न-कोई नई आफ़त।" कसूर कोई करे और दंड किसे ही मिले ? मैं तो अब यहाँ से उकता गयी।"

'ससुर के मरने के बाद तेरी जुबान बड़ी तेज हो गयी है। लाज नहीं आती सास से जबान लड़ाते। गुस्सा तो ऐसा आता है कि'।"

'कि मिट्टी का तेल छिड़क कर जला दूँ।

'ऐसी मैं मूरख नहीं हूँ। तेरी कोख जो भरी है। नहीं तो घर से बाहर धकेल निकालती। कितनी कुलच्छनी है सारे घर को उजाड़ दिया।" इधर माँ रोती और उधर सावित्री।

कभी-कभी माँ अपने गुस्से को पीकर रह जाती। क्या करती वह ? सावित्री भी सहते-सहते थक गयी थी। फिर उसकी कठोर मेहनत से भी माँ परिचित थी। वह सोचती कि यदि वह सचमुच चली गयी तो उसका घर निस्सन्देह उजाड़ हो जायेगा। कौन इतना काम करेगा। स्वार्थ उसे दुर्बल बना देता। फिर खाली घर को देखकर भूत भी गड़बड़ करते हैं।

माँ ने उस दिन रोटी नहीं खायी। सावित्री भी भूखी पेट चली आयी थी। वह बड़ी दुःखी थी। उसका कलेजा दुःख से फटा जा रहा था। वह निढाल-सी पड़ी रही झोंपड़ी में। उसके आँसू पल भर के लिए भी नहीं रुक रहे थे।

तभी आ गया जीता।

सावित्री को झोंपड़ी में लेटी देखकर वह बोला "ऐसी सोयी पड़ी है जैसे सारी खायी रात।"

"कौन ? सावित्री उचककर बैठ गयी। उसने झट-से घूँघट निकाल लिया।

ढेर होता है। "अब हम आजाद हैं अब लड़त होगी बराबर की। अब राजपूतों को मालूम पड़ेगा कि जाटों में कितनी ताकत है!"

बीरसिंह के कानों में जब ये बातें पड़तीं तब वह मुस्करा कर कहता "मैंने कहा न कि वह सठिया गया है। साठी बुद्धि नाठी। साठ बरस के बाद आदमी की बुद्धि भाग जाती है। और इन जाटों के बारे में सभी लोग कहते ही हैं कि जाटों में अकल नहीं होती। स्वभावतः ही ये निर्धन और निर्बल होते हैं। जरा भी बुद्धि और छल प्रपंच नहीं रखते। इसीलिए ही तो बात की जड़ में न जाकर ये मरने लड़ने को उतारू हो गये हैं। दरअसल हरसुख इस तरह मेरी शक्ति को कम करना चाहता है। खुद मुझसे 'पेच' नहीं आ सकता तब इस मामले को जातीयता का रंग देने लग गया है। मैं सब समझता हूँ। चाहे वह कितना ही कुत्ते की तरह भूँ भूँ भौंकता रहे मैं पाँव नहीं बदलने वाला।'

हरसुख ने यह सुना तो तड़पकर रह गया।

वह सेठ गोपीचन्द के पास गया।

सेठ गोपीचन्द ठहरा बनिया। जाति की चतुराई उसमें कूट-कूटकर भरी हुई थी। वह अपने छल-छन्दों से अच्छे-अच्छे बुद्धिमानों की बुद्धि निकाल लेता था। हरसुख का भी वही 'रहबर' था। क्योंकि वह चाहता था कि हरसुख सारे जाटों को लेकर राजपूतों से टक्कर ले ताकि वह इस बीच अपनी शक्ति को मजबूत कर लेवे। इसलिए वह हरसुख को बार बार कहता "चौधरी तुम मेरी बात की गाँठ बाँध लो एक न एक दिन छोटे ठाकुर तुम पर हमला करेगा ही। तुम जाटों को ठण्डा मत होने दो।" और वह हरसुख की पीठ थपथपाता रहता।

एक दिन वह उसे शहर ले गया।

शहर में जाकर उसने कहा "चौधरी! मैं तुम्हें एक बात का यकीन दिलाना चाहता हूँ कि मैं केवल तुम्हारा ही हूँ। इस बार मुझे पूरी उम्मीद है कि 'कांग्रेस-टिकट' मुझे ही मिलेगा। और मेरा सीधा मुकाबिला छोटे ठाकुर से होगा। यदि तुम मजबूत रहे तो मैं इसकी जमानत

बन्द करवा के छोड़ूँगा। राजपूत यहाँ और सोनपुर में ही अधिक हैं बाकी गाँवों में जाट और बनिये। मुझे जाटों का समर्थन मिलना चाहिए। मैं इन्हें बड़ा लाभ पहुँचाऊँगा।

हरसुख ने विश्वास के साथ कहा "सेठजी आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहिए। मैं आपके लिए जान लगा दूँगा।

'मुझे भी कम मत समझना। गोपीचन्द ने गर्दन के झटके के साथ गम्भीर होकर कहा "तुम मुझे यह पूछ न न कि कोई नया धंधा बताओ। मैं तुम्हारे लिए एक बड़ी कोठी खरीद रहा हूँ। उस कोठी का भाड़ा पूरे दो सौ रुपए आते हैं। मैं उस कोठी को तुम्हारे नाम कर दूँगा। तुमसे आठ आने प्रति सैकड़ा ब्याज लूँगा। हालांकि तुमसे ब्याज लेना मैं अच्छा नहीं समझता किन्तु न लूँगा तो तुम्हारी मेरी दोस्ती में फर्क आ जायेगा। तुम मेरा अहसान मानोगे और अहसानमन्द को नजर नीची करनी ही पड़ती है। इसलिए ही मैं तुमसे ब्याज ले रहा हूँ। वैसे मैं चार रुपए प्रति सैकड़ा ब्याज लेता हूँ।

"यह कोठी कितने की है!"

"पच्चीस हजार की।" सेठ तुरन्त बोला और सिगरेट जलाने लगा। हरसुख कुछ गम्भीर हो गया था। सेठ सिगरेट का कश खींच कर बोला "कोठी तुम्हारे नाम से खरीदूँगा और वह मुझसे 'गिरवी' रहेगी। अपना ब्याज काटकर शेष रुपए हर महीने तुम्हें दे दूँगा। धीरे-धीरे तुम उस कोठी को बढ़ाना और मेरे रुपये चुकाना। सच कहता हूँ तुम्हें उस कोठी का हजार रुपए तक किराया आ सकता है।" वह बहुत ही विनम्र हो गया "और मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ।

हरसुख गद्गद हो गया! भावाभिभूत सा होता हुआ वह बोला 'सेठ मैंने सुगनचन्द जी को एकदम गलत लिया है। वैसे वह सनकी और सच्चा है। पर जिला मन्त्री है न वह बड़ा नामी है। वह मेरे दाँव में नहीं आ सकता। बड़ा नाटिया है।"

वह मूरख बनिया।"

राधी होगी। पुलिस आयेगी। उसे चक्कर-सा आने लगा। वह मैली में जाकर निढाल-सी पड़ गयी। उसे लगा कि वह निर्जीव हो जायेगी।

वह कब आयी—सास को यह पता ही नहीं चला। वह बार-बार बाहर की ओर देखती। उसका कलेजा धड़क उठता। हाय राम! अब क्या होगा? वह ईश्वर को हाथ जोड़ती। कभी-कभी वह सोच उठती कि उसने हँसिए को साफ किया कि नहीं? तब सब खून-सा उसकी नस-नस में दौड़ पड़ता। वह चोर की तरह मुँह छुपाए साँझ तक बैठी रही।

गाँव भर में जीता के नाक कटने की खबर फैल गयी। उसे शहर के अस्पताल में भर्ती कराया गया। लेकिन जीता के नाक कटने की खबर इस प्रकार गाँव में फैली कि जीता खेत में बैठा था कि अचानक मुखड़ों को कपड़ों से छुपाये चार लठैत खेत में घुसे और उसे पीटने लगे। जीता ने कड़ा मुकाबिला किया। पर एक से दो मिट्टी के भी बुरे होते हैं। और ये जिन्दा चार थे। आखिर जीता बेहोश हो गया। बेहोशी में वे चारों लठैत उसकी नाक काट कर ले गये। लोगों का यह भी अनुमान था कि ये चारों आदमी गौरासिंह के थे। क्योंकि गौरासिंह को चुनाव में टिकट न दिलाने में यदि कोई बाधक बना है तो हरगुन ने अपने मित्र गुट साथी बग्गू को चौधरी टिकट दिलाने की पूरी बात कर ली। इसी बात का गौरासिंह ने हरगुन से यह बदला लिया है।

सावित्री जब सहमती डरती नीचे उतरी और बाहर गयी तो उसकी पड़ोसिन ने उसे यह खबर दी। उसे इस नाटकीय परिवर्तन पर बड़ा आश्चर्य हुआ। आखिर जीता ने यह कहानी क्यों गढ़ी? उसके पीछे कौन-सा रहस्य हो सकता है। वस्तुतः वह इस्पात का पौरुष था। मर्द की मर्दानगी यह कतई मान नहीं कर सकती कि उसे किसी औरत ने मारा है जलील किया है।

बेचारी सावित्री को इस घटना से मानो धैर्य मिला। किन्तु गाँव का वातावरण गर्म हो उठा। हरगुन ने गौरासिंह को ललकार दिया। आखिर हरगुन भी चौधरी था। उसने चतुराई से काम लिया। उसने

इस बार प्रत्येक चौधरी को जातीयता के नाम पर उभारा। वातावरण जहरीला होता गया। एक बार सरकार पर झगड़ा होते-होते बचा। गोरासिंह ने बीरज कर लिया। उसने स्वयं हुरमुख को समझाया "मैं राजपूत हूँ चाहे आज हमारी आखें आम-सम्बो लाने के काम भले ही आती हों चाहे हमारी तलवारें घर की शोभा भले ही बढ़ाती हों चाहे हमारा ओज और शौर्य सुरा की मादकता में भले ही खो गया हो पर हमारा धर्म और गौरव अभी नहीं मिटा है। मैं बाप का बदला बेटे स नहीं ले सकता। बीता मेरे बेटे सम्भु की तरह है।"

गौरासिंह इतना कह कर चला आया।

गाँव म चौधरी दल ने इस बात को इस तरह रखनी शुरू की "राजपूतों के छक्के छुड़ा दिए हैं चौधरियों ने। अब वे अपने पाप और अपराध पर पर्दा डाल रहे हैं। एक वक्त था कि गौरासिंह किसी इन्सान को इन्सान नहीं समझता था और आज वह हमसे इस तरह डर रहा है जैसे चूहा बिल्ली से डरता है।"

हैपता की आग फैलने लगी।

गौरासिंह ने राजपूतों को नहीं भड़काया। वह इस बार बड़ा तटस्थ रहा। उसने मौन धारण कर लिया। क्योंकि वह जानता था कि उसमें उसका कोई हाथ नहीं है। वह व्यर्थ इसमें क्यों उलझे ?

/ जब कभी छोटे ठाकुर बाजार से गुजरते थे तभी कोई व्यंग से मुस्करा कर कहता "छोटे ठाकुर न जाने क्यों भीगी बिल्ली बन गये हैं। इस बार बीरज ने शेर को हरा दिया।"

गौरासिंह ने कोई विरोध नहीं किया। इस मामले में वह बिलकुल गाँधीवादी बन गया। एकदम शांत और गम्भीर। और हुरमुख चोट खाये साँप की तरह फूं-फूं कर रहा था। चौधरियों का उसे समर्थन क्या मिल गया मानों उसमें दैत्यबल-सा बस गया। वह जहाँ कहीं भी जाता वहाँ अपनी और अपने जाटों की शक्ति की गाथी बखान करता था। कहता "पहले राजपूतों का राज्य था। अपने राज्य में कुत्ता भी

उठी। उसने अपनी नाक को पकड़कर हिलाया। यह हरकत गीतसिंह को विचित्र लगी। वह उसका आशय नहीं समझ पाया। वह पुनः बोला "आप मेरी बात को हलके रूप से मत लीजिए, मैं आपको सच कह रहा हूँ मुझे राड़ नहीं सुहाती है। मुझे व्यर्थ की तून-तड़ाकी में जरा भी मजा नहीं आता है।"

"मैं हरसुख को समझा दूंगा। पर छोटे ठाकुर आप उससे सँभलकर रहियेगा। वह अपने जातीय संगठन को देखकर अन्धा हो गया है। यह जातीयता का जहर कभी न कभी देश को ले डूबेगा। देश का विनाश कर देगा। इन्सान को इन्सान के लहू का प्यासा बना देगा।

गीतसिंह अपने हाथ को हिलाकर बोला "मैं राड़ नहीं करना चाहता, किन्तु कोई मेरे सीने पर चढ़ने की चेष्टा करेगा तो मैं चुप नहीं बैठूंगा। मेरे भी दो हाथ हैं समझे!"

गीतसिंह अपनी मूंछों पर ताव देकर चला गया। उस सेठ की बात तीर-सी लगी। आखिर वह किसके कम है? इसलिए वह बाद में गाँव के बड़े-बूढ़ों के पास नहीं गया। फिर उसने किसी से भी विनती प्रार्थना नहीं की। वह अपने डेरे में आकर बैठ गया कि जबकि कोई समय होने वाला है। इसलिए उसने अपनी बन्दूक ठीक कर ली।

सेठ ने उस दिन अपना अभिनय बड़ा ही उत्तम किया। वह गाँव के प्रत्येक बड़े-बूढ़े के पास गया। उनसे उसने प्रार्थना की कि वह हरसुख और छोटे ठाकुर का आपस में निपटारा करा दें। उनमें समझौता करा दें। दो-चार बड़े-बूढ़े हरसुख और गीतसिंह के पास गए भी पर वह दोनों समझौते के लिए तैयार नहीं थे।

हरसुख ने स्पष्ट शब्दों में कहा "उसके बेटे ने मेरे लड़के की पीटा है। सारे गाँव के सामने उसकी पगड़ी उछाल कर बना दिया। इस अपमान को मैं नहीं सह सकता।

गीतसिंह को क्षमा माँगने के लिए तैयार किया गया। गुमेमान ने गया इनकार रखा।

'माफी माँगने से लघुता क्या है ? कहावत है कि 'भगड़े की जड़-
टी चौदह उँगली और बढ़ी । गौरासिंह ने अपने बेटे को कह कर
ह कौन रचाया है । यह कितनी सुन्दर चाल-चल रहा है । हाथी को
ह चल कुत्ते को कह भौंक ।"

सुलेमान गौरासिंह के पास गया । गौरासिंह अपनी बैठक में बैठा
था हुक्का गुड़-गुड़ा रहा था । सुलेमान को देखते ही वह हुक्के का
म्बा कश खींच कर बोला "क्यों सुलेमान कैसे आना हुआ ?"

"मैं एक प्रार्थना करने आया हूँ । आप ही कुछ नरम हो जाइये ।
छोटी-छोटी बातें कभी बड़ा जंग करा देती हैं । खून की नदियाँ बहा
ती हैं ।"

"खून बहाना सहज नहीं है सुलेमान !" घृणा से मुँह बिचका कर
हा गौरासिंह ने "भलाई नहीं कर सकता है जिसने अपने सिर पर कफन
ाँध रखा हो । मैं हरमुख को जानता हूँ । यह वही हरमुख है न जो
झे अपनी हथेली पर थूकता था । जिसे मेरे सामने सहलाने से फुरसत ही
हीं मिलती थी । वक्त की बात है । फिर भी मेरा वक्त इतना खराब
हीं आया है कि कोई मेरी पगड़ी आसानी से उछाल कर चला जाय ।
च्छा नहीं है सुलेमान तुम जाकर उसे समझा दो वर्ना मैं पत्थर का
वाब पत्थर से दूँगा । वह अपने आपको क्या समझता है । हूँ !" इस पर
भी सुलेमान उसे समझाता रहा पर गौरासिंह नहीं माना । उसने कहा
क कसूर दोनों का बराबर है । उसके भतीजे ने पहले सम्मू को पकड़ा तब
रे बच्चे ने उसे पीटा । अब मैं किसी तरह का समझौता नहीं कर
कता । मेल-मिलाप करा सकते हैं—बराबरी है ।

सेठ ने सभी के सामने हरमुख को समझाया पर उसकी आन्तरिक
च्छा यही थी कि हरमुख और गौरासिंह आपस में लड़कर शक्तिहीन हो
ायें । वह ऊपरी ढंग से सबको समझाता रहा और साँझ होते-होते वह
हरमुख के कानों में जहर उँडेल कर बाहर चला गया ।

गाँव का सारा वातावरण उस दिन आशंकाओं से भरा था । वहाँ

'कभी तो डर लगता है। आपको वह कहावत याद नहीं—बामण कुत्ता बनिया जात देख घुर्राय।' बीच में ही हरमुख बोला "कहीं वह ही आपका बण्टाढार न कर दे।"

"न-न-न।" सेठ व्यग्रता से बोला "मैं उसे खूब पहचानता हूँ। उसे बामण बनिया जाट राजपूत मोची नाई किसी से भी लेना-देना नहीं है। उसे बस लेना है, केवल धनसम्पदारम से। उसे रुपया चाहिए, बस रुपया। उसने कांग्रेस का चोला ही ओढ़ा है अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए। मैं उसे रुपया देकर पटा लूँगा।"

"और सुगनचन्द जी को मैं।"

लेकिन दूसरे दिन ही वह सुगनचन्द जी से मिला और बात ही बात में उनके मुँह से यह निकल गया कि हाईकमान का ध्यान चौधरी हरमुख की ओर भी जाने लगा है। उन्होंने आगे कहा "मैं आपको अँधेरे में नहीं रख सकता सेठजी! हरमुख के जीतने की ज्यादा सम्भावना है। मैं चौधरी मालाराम से मिला था। वह किसी चौधरी को ही टिकट मिल जाने की अपेक्षा रखता है। और यह क्षेत्र अधिकतर जाटों या राजपूतों का बहुमत लिये हुए है। वैसे मैं आपका विरोध नहीं करूँगा।"

'मैं केवल आपसे प्रार्थना कर सकता हूँ। आज आपको मेरे घर पार्टी में आना है।"

उस दिन सेठ के यहाँ पार्टी का आयोजन था।

कांग्रेस के वरिष्ठ नेता एवं शहर के प्रतिष्ठित नागरिक उसमें उपस्थित थे। पार्टी के वातावरण को देखकर लग रहा था कि सभी लोग सेठ के पक्ष में हैं और उसे टिकट मिल जाने की संभावना है। सेठ ने यह भी आश्वासन दिया कि वह चुनाव फंड में पच्चीस हजार रुपया कांग्रेस पार्टी को देगा। उसने आज यह भी डंके की चोट कही कि वह आजादी से पहले भी कांग्रेस की छुपे रूप से मदद करता था। क्यों हरमुख स्वामी नरोत्तम को मैंने अपनी हवेली में छुपाया था कि नहीं? "और आज मैं उसी पार्टी को अपने देश पर शासन करते देखता हूँ तब मन आशाओं

और खुशियों से भर आता है।" फिर क्या था स्वयं ज़िला मन्त्री ने सेठ को एकांत में ले जाकर कहा, "आप निश्चिन्त रहिए सेठ जी।"

"अरे हाँ आपका यह नौकर शंकर है न उसे मैंने २११) रुपये आपके अखबार की सहायता के रूप में दे दिए हैं।"

"मुझे मालूम है पर यह बहुत कम है।"

"कम!" मंत्री खिलखिलाकर हँस पड़ा "अरे भाई साहब यह कुछ है ही नहीं। विशेष सहायता तो मैं आपको बाद में दूंगा।"

रात हो गई। सभी लोग चले गए। शांति छा गई।

सेठ और हरगुण गंभीरतापूर्वक अकेले बातचीत करते रहे। सेठ ने हरगुण की बुद्धि तुरन्त निकाल ली। उसने उसे यह भरोसा दिला दिया कि भीमसिंह तुम्हें पीटने की कोशिश कर रहा है मेरी समझ में उसे तुम पहले ही धर-दबोच लो।

हरगुण ने कहा "कैसे दबोचें यह पत्थर की देवमी (मूर्ति) बन गया है। कितना ही कुछ कहो पर उसके कानों पर जूं भी नहीं रेंगती है।"

"सोच लो मैंने तो तुम्हें सही स्थिति बता दी है। सांप सिर ऊंचा करे इसके पहले ही उसे काट डोगे तो लाभ में रहोगे।"

दरअसल सेठ एक तीर से दो निशाने करना चाहता था। वह चाहता था कि हरगुण और भीमसिंह आपस में लड़ते तो वह और शक्तिमान हो जाएगा। इन दोनों का पतन ही उसका उत्थान था। इसलिए वह उन दोनों को भड़का रहा था।

दुर्योग समझिए कि उसी दिन गाँव के बैजनाथ मन्दिर के मेले में हरगुण के भतीजे ने भीमसिंह के बेटे से छेड़खानी कर दी। फिर क्या था? जवान खून उबल गया और उसने उसकी खूब पिटाई कर दी।

गाँव में यह बात हवा की तरह फैल गई।

भीमसिंह तुरन्त सेठ के पास आया और उसने उससे प्रार्थना की कि वह सभी को समझा दे। मुझे बात बढ़ाने में कतई दिलचस्पी नहीं है।

उसके इस अनुरोध पर सेठ के होंठों पर हलकी-कुटिल मुस्कान नाच

उसकी आँखों और हृदय में डर की एक लकीर-सी खिंच गयी। बहू के प्रति अन्तस की घृणा और वैमनस्य को भूलकर वह शंकित स्वर में बोली, "हरगुन ने जरूर कोई गड़बड़ की है। आज दिन भर गाँव की लुगाइयाँ कह रही थीं। राम ही अब इस गाँव में शान्ति करा सकता है। आग में आग—यह चुनाव-फुनाव। आदमी-से आदमी का बैर करा दिया।

सावित्री चुप रही।

वह दीवार का सहारा लिए सोच रही थी कि वह जाकर जीता को पीटे और चीखकर कहे कि यह झूठा है मक्कार है दुराचारी है। इसकी नाक छोटे ठाकुर के आदमियों ने नहीं मैंने काटी है। क्योंकि यह मेरी इज्जत लूटने आया था। वह बहुत उत्तेजित हो गयी। उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसे मौन देखकर माँ बोली, "बहू! आज वे होते तो यह अनर्थ नहीं होता।"

सावित्री कुछ नहीं बोली। वह फफक-फफक रो उठी। रोती-रोती बोली "मैं बहुत ही निरभागी हूँ सासूजी आज हम पर किसी का भी साया नहीं रहा।"

माँ उसे दुखयारी समझती थी। बात-बात में ताने देती थी पर उसे अथाह दुःख में तड़पते-छटपटाते देख उसका हृदय भी अछोर व्यथा से विलोड़ित हो गया। उसने उसे सीने से लगा लिया और वह निःशब्द धार बरसाने लगी।

और फिर प्रभात हो गया।

हरगुन और उसके पन्द्रह-बीस साथी जोरावरसिंह के घर पर अचानक चढ़ बैठे। कुछ लठैत भी घटनास्थल की ओर लपके। जोरावरसिंह भी घर में आयी आफत को देखकर चुप बैठा नहीं रहा। वह गुन उसका बड़ा लड़का और उसके दो नौकर आ भिड़े। खुल कर लाठियों का प्रयोग हुआ।

अँधेरा!

और खुशियों से भर जाता है।" फिर क्या था स्वयं शिक्षा मन्त्री ने सेठ को एकांत में ले जाकर कहा, "आप निश्चिन्त रहिए सेठ जी।"

"अरे हाँ! आपका वह नौकर शंकर है न, उसे मैंने २११) रुपये आपके अखबार की सहायता के रूप में दे दिए हैं।"

"मुझे मालूम है पर वह बहुत कम है।"

"कम! सेठ खिलखिलाकर हँस पड़ा, "अरे भाई साहब, यह कुछ है ही नहीं। विशेष सहायता तो मैं आपको बाद में दूँगा।"

रात हो गई। सभी लोग चले गए। शांति छा गई।

सेठ और हरगुन गम्भीरतापूर्वक अकेले बातचीत करते रहे। सेठ ने हरगुन की बुद्धि तुरन्त निकाल ली। उसने उसे यह भरोसा दिला दिया "गोरासिंह तुम्हें पीटने की कोशिश कर रहा है मेरी समझ में उसे तुम पहले ही धर-दबोच लो।"

हरगुन ने कहा "कैसे दबोचें वह पत्थर की देवली (मूर्ति) बन गया है। कितना ही कुछ कहो पर उसके कानों पर जूँ भी नहीं रेंगती है।"

"सोच लो मैंने तो तुम्हें सही स्थिति बता दी है। सांप सिर ऊँचा करे इसके पहले ही उसे काट दोगे तो लाभ में रहोगे।"

दरअसल सेठ एक तीर से दो शिकार करना चाहता था। वह चाहता था कि हरगुन और गोरासिंह आपस में लड़ते तो वह और शक्तिमान हो जाएगा। उन दोनों का पतन ही उसका उत्थान था। इसलिए वह उन दोनों को भड़का रहा था।

दुर्योग समझिए कि उसी दिन गाँव के भैरवनाथ मन्दिर के मेले में हरगुन के भतीजे ने गोरासिंह के बेटे से छेड़खानी कर दी। फिर क्या था? जवान खून उबल गया और उसने उसकी खूब पिटाई कर दी।

गाँव में यह बात हवा की तरह फैल गई।

गोरासिंह तुरन्त सेठ के पास आया और उसने उससे प्रार्थना की कि वह उसी को समझा दे। मुझे बात बढ़ाने में कतई दिलचस्पी नहीं है।

उसके इस अनुरोध पर सेठ के होंठों पर हलकी-कुटिल मुस्कान नाच

उसकी आँखों और हृदय में डर की एक लकीर-सी खिंच गयी। बहू के प्रति उस्ताद की घृणा और वैमनस्य को सुनकर वह भयभीत स्वर में बोली "हरगुन ने जरूर कोई गड़बड़ की है। आज दिन भर गाँव की गुआइयाँ कह रही थीं। राम ही अब इस गाँव में शान्ति करा सकता है। बात में बात—यह फुलाव-फुसाव। आदमी-से-आदमी का बैर करा लिया।"

सावित्री चुप रही।

वह दीवार का सहारा लिए सोच रही थी कि वह जाकर चीखे और चीखकर कहे कि यह गुंडा है मक्कार है दुराचारी है। इसकी नाक छोटे ठाकुर के आदमियों ने नहीं मैंने काटी है। क्योंकि यह मेरी इज्जत लूटने आया था। वह बहुत उत्तेजित हो गयी। उसकी आँखों में आँसू आ गये। उसे मौन देखकर माँ बोली "बहू! आज वे होते तो यह अनर्थ नहीं होता।"

सावित्री चुप नहीं बोली। वह फफक-फफक रो उठी। रोती-रोती बोली "मैं बहुत ही निरभागी हूँ सासूजी आज हम पर किसी का भी साया नहीं रहा।"

माँ उसे दुखभरी समझती थी। बात-बात में उसे देखी थी पर उसे अथाह दुःख में तड़पते-बिलखते देख उसका हृदय भी मरोड़ व्यथा से छिन्नभिन्न हो गया। उसने उसे सीने से लगा लिया और वह निःशब्द आँसू बरसाने लगी।

शोर और भयावह हो गया।

हरगुन और उसके पन्द्रह-बीस साथी गौरासिंह के घर पर अचानक चढ़ बैठे। कुछ तटस्थ लोग घटनास्थल की ओर भागे। गौरासिंह भी घर में आयी आफत को देखकर चुप बैठा नहीं रहा। वह खुद उसका बेटा शम्भू और उसके दो नौकर आ भिड़े। खूब जम कर लाठियों का प्रयोग हुआ।

अन्धेरा।

शोर और लाठियों की आवाज।

गाँव के कुछ लोग जो घटना स्थल की ओर लपक रहे थे उनके हाथ में लालटेनें थीं।

आखिर हरसुख के आदमियों ने शंभू को घेर लिया। शंभू पर वे आदमी इस तरह टूट पड़े जिस तरह भूखे बाज कबूतर पर टूटते हैं।

शंभू जोर से चीखा "मुझे बचाओ मुझे बचाओ।

वीरसिंह का खून खौल उठा। वह जोर से दहाड़ा "लाठियाँ रोक दो हरसुख। मैं बन्दूक चलाता हूँ।"

पर लाठियाँ नहीं रुकीं।

वीरसिंह ने एक बार अपने बेटे की चीख सुनी और उसने चाप से बन्दूक अन्धेरे में नाचती हुई छाया पर छोड़ दी।

हरसुख का चचेरा भाई ढेर हो गया।

"हरसुख! छोड़ दो मेरे बेटे को। मैं खून कर दूँगा।"

तभी एक लाठी वीरसिंह के सिर पर पड़ी।

देखते-देखते भीड़ ठाकुर पर टूट पड़ी। गाँव के कुछ लोग स्तब्ध से इस खून खराबी को करुणा भरी दृष्टि से देख रहे थे।

मुनीमजी कह रहा था "हमारा 'मानवता (इन्सानियत) डूब गया। ऐसा जंगलीपन मैंने पहले नहीं देखा। कौन जाकर रोके इन जानवरों को।

तभी पुलिस इन्सपेक्टर कई सिपाहियों के साथ आ गया। और उसने हवा में फायर किये। उन्होंने धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ करनी शुरू की।

तभी सेठ भी आ गया।

उसने आते ही भीड़ पर प्रभाव जमाना शुरू किया "मैंने इन दोनों को बहुत समझाया पर इनके सिर पर खून सवार हो गया था।"

ठाकुर का सिर फट गया। धरती लहूलुहान हो गयी।

इस निराधार लड़ाई में वीरसिंह और उसका चचेरा भाई मर

की स्त्रियों में भी उस दिन इस लड़ाई की बड़ी चर्चा थी।

कुछ डरपोक आदमी आज साँझ पड़ते ही चींटों की तरह अपने अपने घरों में घुस गये। उन्होंने अपने आप से कहा कि कौन दूसरों की राड़ अपने गले बाँधे?

इधर सावित्री की दशा बड़ी शोचनीय थी। वह अपने आपको बार बार यह कहती थी कि यह सब उसके कारण ही हो रहा है। वह अगर अपनी जबान के ताला नहीं लगाती और सीमा टोक-टोक कर यह कहती रहती इस दुराचारी की नाक मैंने काटी है तो यह भयानक नौबत यहाँ तक पहुँचती ही नहीं। किन्तु अब क्या हो सकता है? आग लगने पर कुँआ खोदना सरासर मूर्खता है।

उसने उठकर चारों ओर देखा। असीम शांति छायी हुई थी। ऐसी शांति जो तूफान आने के पहले छाती है। जो तूफान के आगमन का संदेश देती है।

सावित्री ने सोचा "हाँ, सचमुच तूफान आयेगा। बन्दूक की गोलियों का तूफान। खून से सना हुआ तूफान। उसके अंग अंग में झुर-झुरी छूट गयी। पेट में दर्द होने लगा। वह एक अज्ञात आतंक से सिहर उठी। पेट का दर्द? कहीं पेट का गर्भ उसके अन्तस के भय से गिर न जाय? वह भय भीत सी सास के पास पहुँची।

सास गहरी नींद में सोयी हुई थी। उसने हाथ से हिलाकर उठाया। उसने अन्धेरे में ही घूँघट निकाल रखा था। उसने घबराकर बताया कि उसके पेट में दर्द है।

माँ चमक कर उठ बैठी "पेट में दर्द है।"

केवल सिर हिलाकर बतलाया "हाँ।

"कैसे हुआ?"

उसने दीवार की आड़ में रखी थी। वह इस तरह बोली उसे वह यो कह रही है वह दीवार को कह रही है "आज मुझे डर लग रहा है। अकेले म मेरा जी घबराता है।

'फिर नीचे आ जा। मेरे पास सोजा।" और माँ अपने आप बड़बड़ाती "पेट में दर्द पैदा न कर, इस में मेरे वंश का उजाला है।" पर सावित्री ने सोच रखा था कि सास सदा की तरह भलबुरा कर उसे तानें देगी पर आज उसने उसमें स्नेह पाया। अपनत्व पाया।

हजार मेरी माँ घृणा से भरी हो। हजार माँ सावित्री से लड़ती हो। उसे कोसती हो। उसे भला-बुरा सुनाती हो पर जहाँ उसके वंश की रक्षा का प्रश्न आया वहाँ माँ उसके लिए बावली हो जाती। क्षण भर में वैद्य से लेकर ओझा तक को बुला लाती।

माँ ने सावित्री को अपने पास सुला लिया। उसके सामीप्य ने सावित्री के लिए भयमोचन का काम किया। किन्तु उस दिन उसे मेरी याद खूब आयी। वह रात में देर तक आँसू बहाती रही। अपने आपको अभागी कहती रही। उसे विश्वास था कि अब मैं कभी नहीं लौटूँगा और उसे सारी उम्र एक सुहागिन विधवा का जीवन बिताना पड़ेगा। तब उसके मानस पटल पर हमारे प्यार और मनुहार के रंग बिरंगे चित्र तैरने लगे। वह उन्हें याद करके और भी व्यथा-व्याकुल हो गयी। उसके अंग-अंग में उन्मादित पीड़ा का संचार हो गया।

तभी गाँव में जोर का हो-हल्ला मचा।

लोगों की नींदें टूट गयीं। होश उड़ गये। ऐसा भयानक शोर गाँव में इसके पहले नहीं हुआ था। सब आशंकित होगए।

शोर भयानक होता गया। लोगों को यह समझते देर नहीं लगी कि बात क्या है? क्योंकि आज सारे दिन यही चर्चा चल रही थी कि छोटे ठाकुर के कुँवर ने यह काम अच्छा नहीं किया। चार जाये हुए हरगुन को छेड़ा है, कोई-न-कोई अनिष्ट एक दो दिन में होगी ही।

सावित्री के मन में जो आशंका थी वह सत्य में बदलने लगी। उसने भयभीत स्वर में माँ से कहा "जरूर कोई अनर्थ होने वाला है। मुझे बड़ा डर लग रहा है। इतना हल्ला-गुल्ला?"

माँ ने दीया जलाया।

गया। वीरसिंह के हाथ में अभी भी बन्दूक पड़ी थी। गाँव वाले भौंच-क्के थे। मन्नु को मार कर खड़े थे। सभी कह रहे थे कि कैसा जमाना आ गया है। आदमी-आदमी के खून का प्यासा हो गया है। पुलिस ने उनको पकड़ लिया है।

तब भी सावित्री घर से बाहर नहीं निकली। उसका रोम रोम काँप रहा था। उसका सारा शरीर पसीने से लथपथ हो गया। सास थोड़ी देर के लिए बाहर चली गयी थी। वह तुरन्त यह खबर लेकर आयी "बहू! गजब हो गया छोटे ठाकुर मर गये।"

"हैं!"

"हाँ और एक चौधरी भी।"

"कौन?"

"मुन्नू।"

"हाय राम बड़ा गजब हो गया। दो छोटे-छोटे बच्चे। मुन्नू तो सिर्फ २२ बरस का ही था। गौना भी चार बरस पहले हुए था।"

तभी मुन्नू की माँ दहाड़ती चिंघाड़ती और अपना सिर पीटती हुई घर के आगे से गुजरी "हाय मैं लुट गयी राम मुझे पानी देने वाला कहाँ चला गया? ओ रे हरमुन तेरा सत्यानाश हो।"

कई स्त्रियाँ उसे पकड़े हुए थीं। वह जोर-जोर से अपना सीना और सिर पीट रही थी।

बहुत ही दर्दीला दृश्य था। सावित्री उसे देखकर फूट-फूट कर रो पड़ी। माँ को चिंता हो गयी। उसे सांत्वना देती हुई वह चुप बैठी "अरी तू इस तरह छाती फाड़-फाड़ कर क्यों रोती है? मुन्नू तेरा तो कुछ नहीं लगता है?"

वह सहम गयी। उसने रोना एकाएक बन्द कर दिया। लेकिन उसकी आत्मा उस पर कह रही थी "यह सब तुम्हारे कारण हुआ। इसकी जिम्मेदार तुम हो।" और वह फिर भर भर आयी।

गाँव में रातभर दौड़ धूप होती रही। रोना और कलपना दोनों की

मिश्रित भावनायें हवा में तैर रही थीं। घूमा जा रहा था—दोनों दल फिर से तैयारियाँ कर रहे हैं।

सेठ गोपीचन्द ने दोनों को समझाया और उनसे प्रार्थना की कि वे कानून को अपने हाथों में मत लें। रात भर वह दोनों दलों की सहानुभूति प्राप्त करता रहा।

उसकी दौड़-धूप, उसकी तटस्थता उसकी बातों को सुनकर कोई भी यह अनुमान नहीं लगा सकता था कि वह सीधा-सादा इन्सान ही 'कापर' का बीज है। सीहापु के साथ वह पूँजीवादी व्यवस्था का कीड़ा यही सोच रहा था कि अब उसको टिकट मिलना निश्चित है। वह एम० एल० ए० बनेगा। फिर मिनिस्टर। उसकी तृष्णाएँ उस अट्टहास करती पर सजने लगीं।

वह सबको हाथ जोड़ रहा था। समझा रहा था। लड़ो मत। लड़ना बुरा है। गांधी जी ने कहा है कि हिंसा मनुष्यता को नाश कर देती है। इन्सान को इन्सान से प्यार करना चाहिए।

और इन भारी भरकम बातों की तह में उसकी दुराशा बसती जा रही थी—भयानक हिंसा के रूप में।

× × ×

सावित्री तीन दिन के बाद दुखी मन मुन्नू की बहू के पास गयी। वह तीन दिन से मुँह में अन्न का दाना भी नहीं डाल रही थी। रोते रोते उसकी आँखें सूज गयी थीं। चेहरे का रंग उड़ गया था। उसके सूखे सूखे मुख को देखकर लगता था कि वह कई रोज से बीमार है।

सावित्री से वह पिछले दिनों पनघट पर कई बार मिली थी। सावित्री को उसका हँसमुख-स्वभाव बहुत प्यारा लगता था। मुन्नू की बहू 'मानी' जब कभी बात करती थी तब चिड़िया की तरह चहकती थी। हास-परिहास उसके अंग-अंग में भरा रहता था।

सावित्री को देखकर उसका रुका बाँध टूट पड़ा। वह सिसक पड़ी। सावित्री ने उसे अपने सीने से लगा लिया। उसे इस तरह दुलारती रही जिस तरह कोई माँ अपनी नन्ही सी बच्ची को दुलारती है।

"धीरज रख बहन! विधि का लेख अमिट है। उसके सामने ईश्वर की भी नहीं चलती। भगवान श्री कृष्ण को भी भील के तीर से मरना पड़ा। पाँच पांडवों को हिमालय में जाकर गलना पड़ा, राम को बनवास जाना पड़ा और सीता को दोषी बनना पड़ा। भाग्य का लिखा कोई नहीं पढ़ सका है।"

"मैं क्या करूँ बहन, मैं कासी पार डूब गयी। मर्द के बिना स्त्री की कोई कद्र नहीं।"

"तू ठीक कहती है बहन कि मर्द के बिना तिरिया की कोई कद्र नहीं है। उसका जीवन अकारथ हो जाता है। उसे कोई प्रेम नहीं करता। उससे कोई दो मीठे बोल नहीं बोलता। वह बेचारी बिना मालिक की गाय की तरह अनाथ हो जाती है।" और मिश्री की बौछार

व्यथा में सावित्री की अथाह वेदना मिल गयी। टुलुक टुल टुलुक आँसू बहने लगे।

मिश्री अपनी आँखें पोंछती हुई बोली "यह राम मारा हरमुख रात दिन आता और कहता मुन्नू! तू मेरा छोटा भाई है। इस बार हमने ठाकुर के दांत खट्टे कर दिये तो मैं जाटों का राज कायम कर दूंगा। तुझे महरी इलाके में जमीन दिलाऊँगा। वहाँ की जमीन सोना उगलती है। 'पर कौन जाने बहन कि मेरा जेठ उनके लिए 'काल' का दूत था। मुझे यदि यह मालूम पड़ जाता कि इसके पेट में इतनी छुरियाँ कटारियाँ हैं तो मैं उसे अपने द्वार भी नहीं चढ़ने देती। हाय! मैं लुट गयी। हाय मैं जीते जी मर गयी।"

सावित्री ने उसे हिम्मत बँधायी। मिश्री उसकी गोद में मुँह छुपाये सिसकती रही।

सावित्री सोचती रही "इसका पति इसे सदा सदा के लिए छोड़कर चला गया और मेरा पति कब लौटेगा मैं नहीं जानती। लौटेगा भी या नहीं?" झटके के साथ उसकी विचारधारा पर डंक लग गया। वह सिहर उठी। मन ही मन बड़बड़ा उठी 'नहीं वह आयेंगे जरूर आयेंगे। मैं उनका दर्शन किये बिना नहीं मर सकती। मेरे प्राण उन्हीं के चरणों में निकलेंगे। मैं उनसे क्षमा माँगूगी। कहूँगी कि अब आपको जरा भी नहीं सताऊँगी।"

वह फिर रो पड़ी। मिश्री ने मुँह छुपाये हुए ही कहा, 'मोय मरी मैं मर गयी।"

"धीरज रख बहन। मैं जानती हूँ कि तेरी उमर पहाड़-सी हो गयी। तेरा दुख अनंत हो गया पर हौसला रख। ये दो छोटे-छोटे बूढ़ा ससुर और यह बूढ़ी सास। अब तुझे ही मरद की तरह पुरुषार्थ करना है। चुप हो जा चुप!"

मुन्नू की बहू हठात् उठती हुई बोली "सत्यानाश हो इस जेठ हरमुख का अपनी नाम (नाव) में सबको डुबा गया है।"

मुन्नू की माँ आ गयी थी। कल तक उस वृद्धा के माथे पर बोर बँधा हुआ था। हाथों में चूड़ियाँ थीं। माथे में बिन्दी थी पर आज उसने भी विधवा का वेष बना लिया था। उसने सावित्री को देखते ही रोना शुरू कर दिया। सावित्री ने उसे भी धैर्य बँधाया 'आप क्यों रोती हैं? आपने हिम्मत हार दी तो हमारा क्या होगा? हमें कौन धीरज बँधायेगा?"

"क्या करूँ बीनणी। इसे विधवा के वेष में देखकर मेरी छाती फटी जा रही है। कल से मैंने अपने तन पर से सुहाग के सारे चिन्ह उतार दिये। सभी लोग रुष्ट हो गये हैं। कहते हैं—यह सब अशुभ है। गलत है। पर जवान बीनणी के समक्ष मुझे यह सब पहनते अच्छा नहीं लगता। छाती फटी-फटी जाती है। वह एक पल रुककर बोली "इसे समझाओ यह तीन दिन से अन्न का एक दाना भी मुँह में नहीं डाल रही है।"

मन्नी ने सासू के समक्ष कुछ नहीं कहा। उसने घूँघट भी निकाल लिया था। जब वह चली गयी तब सावित्री ने उससे प्रार्थना की "ऐसा करने से क्या होगा बहन? जो भाग्य में लिखा था वह तो हो ही गया अब हृदय को ढाढ़स देने में ही समझदारी है।"

"क्या करूँ कौर गले के नीचे उतरता ही नहीं है। बार-बार उनकी सूरत आँखों के आगे आ जाती है और कौर गले में फँस जाता है।"

"हृदय को समझाओ।

वह बड़ी देर तक मन्नी को समझाती रही। कई बार उसके मन में यह भी आया कि वह मन्नी को बता दे कि उसने ही जीता था नाक काटा है। किन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों और एक भय से वह इस रहस्य को होंठों पर नहीं ला सकी। जब यह रहस्य उसके अन्तस्तल में घुटन पैदा करने लगा तब वह वहाँ से चली आयी। वह काम करती हुई रो रही थी। उसे बार-बार यह विश्वास होता था कि वही इस मौत की जिम्मेदार है। केवल वह!

× × ×

सुलेमान मेरे घर आया था।

"भौजी घर में है क्या ? उसने आते ही बाहर से आवाज लगायी।

माँ बाहर निकली। स्नेह भरे स्वर में बोली "आओ सुलेमान आओ हुक्का भरूँ।

"नहीं भौजी हुक्का अभी सेठजी के यहाँ पीकर आया हूँ। कहो क्या हाल-चाल है ? शहर जा रहा हूँ। कुछ काम है ?"

"एक ही काम है सुलेमान मेरे लाडले को ढूँढना इस तरह की बातें देख-सुनकर तो मेरी आँखों की नींद ही उड़ी जा रही है। रात-रात भर ऐसी उल्टी-सीधी बातें सोचती रहती हूँ कि तुम्हें क्या बताऊँ ?"

"भौजी भगवान पर भरोसा रखो तुम्हें अपने बेटे से मिलायेगा।

"प्रभु आजकल हमसे रूठा हुआ है भैया। उसकी कुदृष्टि हम पर है वर्ना आज यह घर बेटे के होते हुए उससे सूना नहीं होता। हाँ एक काम करना कुछ कपड़े-लत्ते शहर से मंगवाने हैं। तू सौदा देखकर ले आना।"

"ठीक है।"

"और लड़ाई झगड़े का क्या हाल है ?"

"इसकी बात ही न कर भौजी। ऐसा जमाना भगवान न दिखाये तो अच्छा। इस तरह की लड़ाई और नफरत तो मैंने जीवन भर में भी नहीं देखी तुम्हें याद होगा कुछ लोग हमारे घर में चोरी करते घुस आये थे। गाँव वालों को मालूम हो गया था। सौ लाठियाँ एक साथ निकली थीं। चौधरी ब्राह्मण और राजपूत सभी थे। 'पर वाह रे कलियुग ! चौधरियों ने राजपूतों की दुश्मनी करा दी राजपूतों के खिलाफ ब्राह्मणों को भड़का दिया। इधर कुछ नेता लोग हमारे पास आये और बोले कि भाई सुलेमान अगर तुम हमें सारे मुसलमानों के वोट दिला दो तो मस्जिद

की पूरी मरम्मत करवा देंगे। धन्य है इन लोगों को! इनमें अशराफ भी था। सोची! वही अशराफ जो मुझे दंगों के दिनों में मारने आया था। जिसने मस्जिद को तहस-नहस करने की योजना बनायी थी वह छाती ठोंक-ठोंक कर कह रहा था—सुलेमान भाई मस्जिद को मैं फिर बनवा दूँगा।' "राजनीति इन्सान को कितना ढीठ और नंगा बना देती है। मान-अपमान दोनों राजनीति के लिए एक से होते हैं। सच ऐसी सुरतों को देखकर ऐसा मन हो रहा है कि सारे धर्मों और इमामों को जला दूँ। अधिकारों को हाथों में लेकर कहूँ—भविष्य में किसी ने मुझ समाज को मुसलमान हिन्दू को हिन्दू कहा उसे जेल में बन्द करा दूँगा। कोई जातीयता और कौमियत पर एक शब्द भी कहेगा उसे इन्सानियत का दुश्मन समझकर कठोर दंड दूँगा। तभी ये लोग सच्ची राह पर आयेंगे। हम केवल इन्सान के नाम से जाने जाएँ बस।"/

मां का चेहरा करुणा से अभिभावित हो गया "सुलेमान भाई, झूठ बोलूँ तो ईश्वर मुझे दंड दे। गुड्डू की बहू इस तरह रो रही थी कि मेरी छाती फटने लगी। आग लगे इस हरमुख को। एक प्यारी भाभी भाव को दुखा देता है।

सच कहता हूँ भौजी इस बार धीरसिंह जी ने बड़े धीरज और धरम से काम लिया था पर हरमुख तो इसकी छाती पर ही चढ़ बैठा। छाती पर चढ़ने पर कौन मन जायेगा। आखिर हरएक के दो हाथ होते हैं। हरएक का मान-सम्मान होता है।"

"अब क्या स्थिति है?

रिपोर्ट यह है कि पुलिस इन चौधरियों को नहीं छोड़ रही है। बेचारा मैं गौरीचंद कोशिश कर रहा है। पर इनको सजा हुए बिना नहीं रहेगी। इधर हरमुख का केस जीता भी हुसनाम से चल गया है। हजारों रुपये खर्च हो जायेंगे।"

"अब सुलेमान भाई एक जमाना था कि गाँव का हर आदमी दूसरे आदमी के दुख-सुख में शामिल होता था। पर इन मिलोंबे धुनारों ने

आदमी-आदमी में ज़हर घोल दिया है। इसके पठानों का राज आज क्यों खोता था।"

"ऐसा मैं नहीं कहूँगा बीबी राज यहीं खोता है पर बुरी है आदमी की खुदगर्जी उसका लोभ। हर आदमी किसी तरह अपनी दाल पकाना चाहता है। अब वह अपनी वाहवाही के लिए जाति धर्म और ईमान सबको दाँव पर लगाने से नहीं चूकता। दरअसल आदमी बहुत गिर चुका है अपने उसूलों से।

"जो जैसा करेगा, वैसा पायेगा।

"राम राम बीबी।

"ठहर, तुझे रुपये लाकर देती हूँ।"

माँ भीतर गयी। वह रुपये निकाल कर लायी। सुलेमान उसे अपने कुर्ते की भीतरी जेब में रखता हुआ चला गया।

माँ ड्योढ़ी पर खड़ी रही।

आज उसे अपना पति याद आ रहा था। उसे पक्का विश्वास था कि अगर वह होते तो यह खून-खराबी नहीं होती। वह किसी पर भी अन्याय करते और होते नहीं देख सकते। माँ का मन भारी हो गया।— वह आकर रोने लगी। उसे देखकर सावित्री भी सिसकने लगी। अपनी अपनी व्यथा और अपना-अपना रोना। तब माँ फिर सावित्री को पिछली घटनाओं के लिए दोषी ठहराने लगी। सावित्री सदा की तरह चुप रही। उसे विश्वास था कि सास का मन अब मैला नहीं है। वह उफनती है चूल्हे पर गर्म होते दूध की तरह थोड़ी देर।

× × ×

समय सूखे पत्तों की तरह उड़ गया।

सावित्री ने एक पुत्र को जन्म दिया। उत्सव-आयोजन नहीं हुआ। दुख-सुख दोनों थे। दादा की मौत बाप का लापता और पोते का जन्म ? एक सुख-दुख मिश्रित अजीब सिलसिला। माँ रोती भी और मुस्कराती भी। बेटी भी बहुत अच्छी हुई। हरसुख व अन्य तीन चौधरियों को आजीवन कारावास हो गया। उन्होंने छोटे ठाकुर पर कातिलाना हमला किया था वह भी उनके घर पर। गीता ने अपने पिता को छुड़ाने के लिए पैसे को पानी की तरह बहाया। घर-जमीन सभी बेच डाले। कंगाल हो गया। खाने-पीने को मुँहताज हो गया पर वह हरसुख को नहीं बचा सका। सेठ रोशनलाल एम० एल० ए० (विधान सभा का सदस्य) बन गया। वह अपनी चतुराई से दोनों दलों को अंत तक महान नेता की तरह उपदेश देता रहा कि कानून को अपने हाथ में मत लो।

अब अपनी शक्ति बढ़ गयी थी गाँव में।

इस चुनाव के दौरान में शंभू और सुलेमान ने उसकी असलियत जानी। सेठ राजपूतों के पास गया। उनसे बोला कि मैं चौधरियों का जानी दुश्मन हूँ। वे जाटस्तान बना रहे हैं। वे चाहते हैं कि जाट की बेटी जाट को जाट का वोट जाट को। पर मैं आपका सहयोग चाहता हूँ। मैं इस प्रकार धर्मों को साथ नहीं ले सकता। उसने ठाकुर धीरसिंह के बेटे से कहा "पुलिस इन्सपेक्टर मैं ही लाया था। हरसुख को जन्म-कैद दिला कर ही छोड़ूँगा।"

और मुसलमान को उसने कहा "राजपूत जाट का देश का भला करेंगे ? उन्हें आपस में लड़ने से भी फुर्सत नहीं है।" यही राजनीति

कुचक्र उसने चलाया। मैहक और गाँधी के नाम से वह बहुमत ले जीत गया। साथ ही अपना नंगापन भी बता गया। समझदार उसकी असलियत जान गये पर बहुत बाद में।

अब सुलेमान और धर्मसिंह उसका विरोध करते थे। वे जगह-जगह यही कहते थे—गाँववालों में नफरत का जहर फैलाने वाला यही साँप है। पहले हम भी इसकी असलियत नहीं जान पाये थे। पर अब हम भी जान गये हैं।

कुछ भी हो गाँव में एक बार पूर्ण शांति आ गयी थी। लगता था—माँ धरित्री क्षणिक भूचाल के बाद स्थिर हो गयी। नया अमन चैन आ रहा है। दिन गुजर रहे थे।

मेरी माँ खुश थी।

और जब उसका पोता उसके पुत्र की प्रतिछवि लेकर आँगन में टमक-टमक घुटनों के बल चलने लगा तब बहू के प्रति जो भी रोष द्वेष-कलुष उनके मन में था वह नितान्त मिट गया। /सावित्री का जीवन अब धार्मिक-आदर्शों पर आधारित रहने लगा। वह लगभग चार बजे उठती। स्नानादि करके पूजा-पाठ करती। सुबह-सुबह माँ के कानों में रामायण का पाठ पड़ता। माँ का मन भक्ति-विह्वल हो जाता। उस दिन सावित्री ने गद्गद कंठ से पाठ किया—

कौसल्या कह दोस न काहू। करम विवस दुख-सुख छति लाहू।
कठिन करम गति जान विधाता। जो सुभ असुभ सकल फलदाता॥

माँ विह्वल हो उठी। उनकी आँखों में अविरल अश्रु प्रवाहित हो गये। वह विगलित-स्वर में बोली "सचमुच बहू! सब कुछ कर्म के अधीन है। कर्म सबसे बलवान है।/

"लेकिन कर्म को सब कुछ मान कर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना भी ठीक नहीं है। पुरुषार्थ भी करना चाहिये।

"हाँ बहू।"

तभी सावित्री का बेटा 'राजा' रोने लगा। हाँ वह केवल सावित्री

का ही बेटा है। पता नहीं मेरा मन उसे अपना बेटा कहते हुए क्यों संकोच से झुक जाता है। जिस नारी ने पाँच वर्ष तक कठोर-तपस्या करके जिस बच्चे को पाला उस पर मेरा अधिकार कैसे हो सकता है।

माँ उठी। उसने राजा को गोद में से लिया और बड़े प्यार से उलाहना देने लगी "कितना हुशियार है इधर माँ उठी कि उधर झट से राजा बाबू ने आँखें खोल दीं। मैं सब समझती हूँ तू अपनी माँ को काम नहीं करने देगा।" और माँ ने उसके गोरे मुखड़े पर अनगिन चुम्बनों की वर्षा कर दी।

"माँ जी!" सावित्री ने कहा "आप इसे रखिये मैं घर के काम करने में लगती हूँ।

"तू मुझे बिलकुल निकम्मी करके छोड़ेगी।"

"क्यों?"

"कुछ काम भी करने नहीं देती।"

"बहुत बड़ा काम तो है आपके लिए।"

"क्या?

"इस शैतान को सँभालना क्या मज़ाक है कि कोई ज़रा-सा भी काम करले।"

"नहीं बहू यह शैतान नहीं है। यह मेरा राजा बेटा है। घर भर का चन्द्र-सूरज!"

सावित्री ने राजा को एक ममता भरी दृष्टि से देखा। उसकी दृष्टि सजल हो गयी। उसके मन में यह शब्द गूँज उठा "यह मेरा और नाम-गान करने वाला है।" और वह फिर काम में संलग्न हो गयी।

माँ राजा को लेकर प्रसन्न रहती थी। सावित्री ने घर में माँ को कमी का आभास नहीं होने दिया। वह सारा काम अपने हाथ से करती थी। उसने घर की मान और शान में ज़रा भी बट्टा नहीं लगने दिया। वह निर्भीक चिड़िया की तरह खेतों और जंगलों में विचरती थी।

सारे गाँव के उसे एक मर्दानी औरत कहते थे। इसके साथ ही वह अत्यन्त

धार्मिक मनोवृत्ति की हो गयी थी। एकादशी पूर्णमासी मंगलवार को हनुमानजी और अन्य व्रत-उपवासों को वह निराहार रहती थी। सदा मंदिर जाकर शिवजी का दर्शन करती थी। बिना उसका दर्शन किये वह जल भी मुँह में नहीं डालती थी।

लेकिन यह सब क्यों? सिर्फ मेरे लिए। वह हर घड़ी चाहती थी कि मैं एक बार चला आऊँ। मैं एक बार आकर उसके बसे-बसाये घर को देख लूँ। उसके प्रतिरूप बेटे को देख लूँ। वह मेरी याद में जोगन बन गयी थी। क्या सांख्य का दर्द उसके दर्द के सामने था? सांख्य प्रीत को समझती थी और वह प्रीत को नहीं सिर्फ पति को चाहती थी। उसे उसका पति चाहिए था। ताकि उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाय। उसका मान बढ़ जाए। उसका सुहाग शृंगार सज सके। तभी वह पाठ-पूजा में निमग्न रहती। प्रार्थना करती थी बस 'वे' आ जाँय। बस राजा के बाबू चिरायु हों। उनको कुछ अशुभ न हो।

उस दिन वह अन्धेरे-अन्धेरे मन्दिर से लौट रही थी। इधर उसके चेहरे पर यौवन की चमक की जगह तप की दीप्ति अधिक मुखरित हो रही थी। एक अलौकिक आभा और थी जो तपस्वियों के मुखों पर आयी रहती है वह उसके मुख पर चमकने लगी। तभी एक नारी-कंठ ने उसे पुकारा "सावित्री।

वह एकदम रुक गयी। घूम कर देखा। घूँघट में मुख छुपाये, गोदी में तन छुपाये एक गठरीनुमा स्त्री उसके सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। भौभरका (तड़का सुबह) था। धुंधला अन्धकार फैला हुआ था।

"क्या है बहिन?" सावित्री ने स्नेह से पूछा।

'मुझे नहीं पहचाना।"

"नहीं। उसने सहज भाव से उत्तर दिया।

आगन्तुका का कंठ भारी था। शायद वह थोड़ी देर पहले रोयी हो। उसने हाथ जोड़ कर कहा "मैं पीता की घर वाली हूँ। आज तेरे पास एक जरूरी काम से आयी हूँ।"

"बीता !" सावित्री ने मन ही मन दुहराया। इस नाम के उच्चारण मात्र से उसकी आत्मा घृणा और व्यथा से भर आयी और नाक-कटने की घटना से उत्पन्न मूर्ती और उसकी आँखों के आगे क्षण भर में नाच कर ओझल हो गयी। तब उसकी आत्मा अपराधी की तरह काँप गयी। स्तब्ध खड़ी रही। उसने प्रभु की अभ्यर्थना की कि वह उसे क्षमा करदें।

वह बड़ी देर तक मौन खड़ी रही। बीता की पत्नी के चेहरे के भाव वह नहीं पढ़ पायी। उसने अभी भी घूँघट निकाल रखा था। वह अभी भी निश्चल खड़ी रही।

सावित्री ने उसके समीप आकर कहा "तू ने यहाँ किसका घूँघट निकाल रखा है।

वह थोड़ी चौंकी। हिली।

"क्या मेरा? मैं तो तेरी जैसे देवरानी हूँ।"

उसने घूँघट थोड़ा सा ऊँचा किया। वह एक साधारण सी स्त्री थी। उसके [illegible] थे। हल्के अन्धेरे में भी उसकी कुछ उभरी गालों की हड्डियाँ स्पष्ट दिख रही थीं।

"क्या काम है?" उसने पूछा।

"चलते हुए काम चाहती हूँ पर कहीं मिलता रहा भी नहीं जाता। बहन दो रोज से चूल्हा नहीं जला है। घर में अन्न का दाना भी नहीं है। सभी भूखे प्यासे ही पड़े हैं। मैं और वह पेट पर पत्थर बाँध कर रह सकते हैं पर नन्हें-नन्हें बच्चों को बिलबिलाते हुए नहीं देख सकती। बच्चे रात भर रोते-रोते थकते रहे। एक बार तो मैं चाहा था कि कहीं जाकर डूब मरूँ! पर इन बच्चों का मोह नहीं छुट पाता।" वह रो पड़ी।

"तेरा नाम क्या है?"

"चंदनी!"

"तुम चंदनी इस तरह हिम्मत हारने से क्या होगा? सुख-दुख विधि विधान है। जब वे दिन भी नहीं रहे तो यह दिन भी नहीं रहेंगे। तू मेरे घर कल काम देखो। रोती क्यों है। फिर अपनी इस तरह हिम्मत रख

धार्मिक मनोवृत्ति की ही कमी थी। एकादशी पूर्णमासी मंगलवार को हनुमानजी और अन्य व्रत-उपवासों को वह निराहार रहती थी। सदा मंदिर जाकर शिवजी का दर्शन करती थी। बिना उसका दर्शन किये वह जल भी मुँह में नहीं डालती थी।

लेकिन यह सब क्यों ? सिर्फ मेरे लिए। वह हर घड़ी चाहती थी कि मैं एक बार चला आऊँ। मैं एक बार आकर उसके बसे-बसाये घर को देख लूँ। उसके प्रतिरूप बेटे को देख लूँ। वह मेरी याद में जोगन बन गयी थी। क्या लांछा का दर्द उसके दर्द के सामने था ? लांछा प्रीत को समझती थी और वह प्रीत को नहीं सिर्फ पति को चाहती थी। उसे उसका पति चाहिए था। ताकि उसकी प्रतिष्ठा बढ़ जाय। उसका मान बढ़ जाए। उसका सुहाग शृ गार सज सके। तभी वह पाठ-पूजा में निमग्न रहती। प्रार्थना करती थी बस 'मैं' था बाँस। बस राजा के बाबू चिरायु हों। उनको कुछ अपुष्ट न हो।

उस दिन वह अन्धेरे-अन्धेरे मन्दिर से लौट रही थी। इधर उसके चेहरे पर जोवन की चमक की जगह तप की दीप्ति अधिक मुखरित हो रही थी। एक अलौकिक आभा और भी जो तपस्वियों के मुखों पर छायी रहती है वह उसके मुख पर चमकने लगी। तभी एक नारी-कंठ ने उसे पुकारा "सावित्री।"

वह एकदम रुक गयी। घूम कर देखा। घूँघट में मुख छुपाये योवन में तन छुपाये एक कठरीनुमा स्त्री उसके सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। भौंकरवा (लड़का युवक) था। चु बसा चमत्कार कैसा हुआ था।

"क्या है बहिन ?" सावित्री ने स्नेह से पूछा।

"मुझे नहीं पहचाना।"

"नहीं। उसने सहज भाव से उत्तर दिया।

आगन्तुका का कंठ भारी था। शायद वह थोड़ी देर पहले रोयी हो। उसने हाथ जोड़ कर कहा "मैं जीता की घर वाली हूँ। आज तेरे पास एक जरूरी काम से आयी हूँ।"

"भीतो !" सावित्री ने मन ही मन दुहराया। इस नाम के उच्चारण से उसकी आत्मा घृणा और व्यथा से भर आयी और नाक-काटने घटना से उत्पन्न खूनी कीच उसकी आँखों के आगे क्षण भर में आँख ओझल हो गया। तब उसकी आत्मा अपराधी की तरह काँप गयी। रह खड़ी रही। उसने प्रभु की अभ्यर्थना की कि वह उसे क्षमा कर दें।

वह बड़ी देर तक मौन खड़ी रही। भीता की पत्नी के चेहरे के न वह नहीं पढ़ पायी। उसने अभी भी घूँघट निकाल रखा था। वह ी भी निश्चल खड़ी रही।

सावित्री ने उसके समीप जाकर कहा, "तू ने यहाँ किसका घूँघट काल रखा है।

वह थोड़ी चौंकी। हिली।

"क्या मेरा? मैं तो तेरी जैसी देवरानी हूँ।

उसने घूँघट थोड़ा सा ऊँचा किया। वह एक साधारण सी स्त्री थी। सके लगभग छः बच्चे थे। इसके अन्धेरे में भी उसकी कुछ उभरी गालों की हड्डियाँ स्पष्ट दिख रही थीं।

"क्या काम है?' उसने पूछा।

"कहते हुए लाज आती है पर कहे बिना रहा भी नहीं जाता। बहन दो रोज से चूल्हा नहीं जला है। घर में अन्न का दाना भी नहीं है। सभी अपने पराये हो गये हैं। मैं और वह पेट पर पत्थर बाँध कर रह सकते हैं पर नन्हें-नन्हें बच्चों को बिलबिलाते हुए नहीं देख सकती। बच्चे रात भर रोती-धोती करते रहे। एक बार तो मैं आया था कि कहीं जाकर डूब मरूँ! पर इन बच्चों का मोह नहीं छूट पाया।" वह रो पड़ी।

"तेरा नाम क्या है?"

"चंदरी!"

"तुम चंदरी इस तरह हिम्मत हारने से क्या होगा? दुख-सुख विधि विधान है। जब वे दिन भी नहीं रहे तो यह दिन भी नहीं रहेंगे। तू मेरे घर अब काम देखेगी। रोती क्यों है। छि: पगली, इस तरह हिम्मत हार

रोती तो पीछे भाभी को कौन हिम्मत बँधायेगा।"

सहसा सावित्री का मन शंका से भर आया।

हरमुख उसके ससुर का दुश्मन है। "कहीं सासजी नाराज हो गयीं तो ? मैं सास जी को हाथ जोड़ दूँगी। कमली इसके बच्चे भूखे हैं। रोटी के लिए तरस रहे हैं।"

वे दोनों घर आयीं।

"माँ जी !

"क्या है बहू ?"

"एक भूल हो गई।"

"क्या ?"

"आप नाराज न हों तो बताऊं ?

"नहीं होऊँगी। पहले बता तो सही।"

"नहीं। पहले मेरी कसम खाइए।"

"कसम। क्यों ? अरे ऐसी क्या बात है !"

"पहले कसम खाइए तब बताऊँगी।"

"अच्छा दे। कसम न सिखा पर विश्वास रख नाराज नहीं होऊँगी।

"माँ जी कमला की बहू बाहर खड़ी है। बेचारी के बच्चे दो रोज से भूखे हैं। मेरे सामने झोली पसार कर रोने लगी। मुझे दया आ गई। मैं उसे अपने घर ले आई। इसे थोड़ा-सा नाज दे दीजिए न।"

धुँधला प्रकाश फैल गया था।

माँ के चेहरे का रंग बदल गया। कठोरता और निर्ममता की रेखायें उसकी आकृति की झुर्रियों में मिलकर उसे भयानक बना गईं। सावित्री सिर से पाँव तक काँप गई। वह मन ही मन अपने प्रभु को स्मरण करने लगी। उसने प्रार्थना की कि प्रभु उसकी लाज रखें।

माँ ने कुछ रुखाई से कहा, "तू जानती है यह हमारे खानदान का दुश्मन है। उसने हमें सदा कलंकित करने की चेष्टा की है। उसी के कारण मेरे घर के दोनों मर्द हमसे दूर हो गए और तू उसकी मदद

करना चाहती है ?"

"मैंने आपसे पहले ही अरदासना (विनती) कर दी थी कि मुझसे भूल हो गई है। माँ जी ! दुख एक अन्धेरा है। अन्धेरे में हमारी छाया भी हमारा साथ छोड़ देती है। ऐसे समय प्रभु को भी सहायता करनी चाहिए। माँ जी ! आप कृपालु हैं। उसके बच्चों पर दया कीजिए। समय की गति को कोई नहीं जानता। क्या पता कब किसके दुर्दिन आ जाएँ ? फिर प्रभु भी वह अपने सामने हाथ फैला दे यह तो अपनी जीत हो ही गई ?" पिछली बात माँ पर असर कर ही गई।

माँ कुछ देर तक पत्थर की तरह खड़ी रही। बाद में वह भीतर गई। सावित्री हर्ष से भर उठी। वह झपट कर बाहर गई। देखा—चंदनी वापस मुड़कर जा रही थी। उसने दौड़कर हाथ उसका पकड़ लिया।

"वह पगली माँ की बात का बुरा मानती है। माँ तो मोम है। जानती है—मोम कैसे बहुत कड़ा होता है पर जरा-सी आँच से वह पिघल कर बहने लगता है। उनकी बातों का बुरा मत मानना। बच्चों का हाथ खुलते-खुलते खुलेगा।

"बहू।"

"आई माँ जी।" सावित्री लपककर माँ के पास गई। माँ एक पायला भर कर साथ ले आई।

"ले।" और माँ चली गई।

सावित्री ने चंदनी के ओढ़ने में सारा आटा उड़ेल दिया। एक बार उसने फिर चंदनी से कहा "बहन तू माँ का बुरा मत मानना।"

"नहीं बहन मैं उनका कुछ भी बुरा नहीं मानूँगी। समय बड़ा बलवान है। वह किसी वैरी को भी ऐसे दुर्दिन न दिखाए। और मैं तो जब तेरे पास आई हूँ। सभी तेरे मन के गीत गाते हैं। कहते हैं—बड़ी मर्दानी औरत है। पंच-पंच जोड़ का बना है। दुख को सुख की तरह समझती है। बड़ी दयालु है। अच्छा बहन।" वह चली गई।

उसके जाते ही सावित्री का मन भर-सा आया । सोच
इस पुण्य से वे लौट आएँ । जरूर आयेंगे । गरीब की दुआ
करती है । और वह काम में मशगूल हो गई । वह विचारती
कठोर वचन पंडती को अच्छे नहीं लगे । वह नहीं चलती
से अपना पाँव भी नीचे नहीं रखती थी । दो-दो सेर चाँदी
पर आज !" कदाचित् वह भी ईश्वर अच्छा कर रहा है ।
दुआ अच्छा फल देगी ।

बीच में ही माँ ने पुकारा "बहू, आज बिलोना नहीं क

"करती हूँ !" कहकर वह बिलोना करने लगी । दही
आवाज घर्र्-घर्र् घर में गूँजने लगी । तभी राजा टलक
हुआ आया और बिलोने की डोरियों को पकड़कर खड़ा हो

सावित्री उसके भोले मुख को देखकर चलती की बात भ
वह अपलक उसकी भाव-मुद्रा को देखती रही । उसकी इच्छा
उसके गालों पर चुम्बनों की वर्षा कर दे । किन्तु वह इस रा
भी आलौकिक आनन्द लेना चाहती थी । उसने पुकारा
"आइए तो ?"

"क्या है !" माँ ने पूछा ।

"जरा सँभालिए न, अपने लाड़ले को ।"

माँ बैठ गई ।

राजा को दही की हंडिया में हाथ डालते हुए देख
रही । उसके गाल पर हल्का-सा चपत लगाती हुई बोली '
का ? क्यों यह ठीक भगवान किसन की तरह लगता है मेरा
तरह देखना भर होगा और दही से हाथों का भरना ।'
भावाभिभूत हो गई "ठीक मेरा भगवान भी इस तरह माखन
था । भगवान की क्या अजीब लीला है ? मेरा पोता मेरे
एक बात लेकर पैदा हुआ है । हाय भगवान मुझ मूरख
क्षमा करेगा मैंने तुझ पर जुल्म किया था तेरी ओर की

था। तू तो साक्षात सत्यवान वाली सावित्री है। तेरे तेज और धर्म के सामने कोई नहीं ठहर सकता। वर्ना अपने लछम पै उम्र में इतनी बड़ी होकर बहुत कम मोट्यार (जवान) बहुएं अपवित्र हुए बिना रही हैं ? मैं कइयों को जानती भी हूँ। पर तू तू सती है।

सावित्री के मन पर इन बातों की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। वह प्रकृतिस्थ-सी उन बातों को सुनती रही।

माँ का गला रुंध-सा हो गया। आँखें भर आयीं। अपने आँसुओं को पोंछती हुई पोते को सीने से लगाकर वह आहिस्ते आहिस्ते बोली "आग बाहकर भी सरवण को नहीं भूल सकती। जब राजा सामने होता है तब सरवण का वास रूप और उसकी लीलाएं मेरी आँखों के सामने साक्षात होने लगती हैं।" और माँ ने सदा की तरह दृढ़ स्वर में कहा "मेरा बेटा जरूर आएगा। इस पोते के पांव बड़े ही शुभ हैं।

गाय बैंऽ बैंऽ "करने लगी।

माँ ने बच्चे को गोद में लेते हुए कहा शायद गाय के दुहने का समय हो गया है तू कहे तो आज मैं ही गायों का काम निपटा लूं।

"नहीं मैं सब कर लूंगी।" सावित्री ने आँसू पोंछकर दही को पुनः बिलोना शुरू कर दिया।

माँ बच्चे को लेकर हलका-फुलका काम करने लगी।

दही मथने की ध्वनि अब भी गुंजित हो रही थी।

× × ×

इसके तीसरे दिन चंदनी की भेंट सावित्री से फिर हुई। सरवर का घाट था। दोनों बनियाँ पानी भरने आयी थीं।

"कैसा हाल है चंदनी ? घड़ा रखती हुई सावित्री बोली।

"सच कहूँ या झूठ ?'

"सच। लगता है कि तू मेरी सास के कहने को बुरा मान गयी।" सावित्री ने झट से प्रश्न किया।

"नहीं बहन ! मैं अब किसी का भी बुरा नहीं मानती हूँ। और तेरी सास का बुरा मुझे उस समय बहुत भला लगा जब सेठ बोधीचंद ने उनको एक दाना अन्न का तो नहीं दिया पर बातें हजार सुना दीं। वह घर आकर रोने लगे। और वह मुआ सेठ है न उन्हें देखकर अजीब-सी हरकत करने लगा। उसकी नाक भौंहें देखकर उन बदमाशों ने डाटनी इसमें उनका क्या कसूर है ? मुझे अपने दुख से अधिक उनकी चिन्ता है। मैं उन्हें रोते नहीं देख सकती। बुरे दिन किसके नहीं आते ? जो भी घमण्ड से सिर ऊँचा करता है ईश्वर उन्हें नीचा दिखाये बिना नहीं रहता। वह सबका गर्व चूर करता है बहन !"

"तू ठीक कहती है। हाँ एक बात बता तूने अपने पति को तो इस लेन-देन के बारे में नहीं बताया ?"

"उन्होंने कई बार पूछा पर मैंने नहीं बताया। वह दुखी हो गये। अपने आपको कोसते हुए बोले कि आज मेरा तप इतना कमजोर हो गया है कि मेरी घरवाली भी मुझसे बात छुपाने लगी। तो बहन मैं डर गयी। मर्द का मन ठहरा। कहीं उल्टी समझ बैठे तो ? इसलिए मैंने तेरा नाम ले लिया। तेरा नाम लेते ही वह एक बार चौंके। चौंकना भी

वाजिब था। दुश्मन को ऐसी दुखी इस गाँव में मत कहीं भी न देख
जाती है। वह कुछ देर तक पत्थर के देव की तरह बैठे रहे। मैं उ
घबराहट से देखती रही। उनकी आँखें आँसुओं से भर आयी।

मैंने पूछा "आप रोते क्यों हैं ?"

वह आँसू पोंछकर बोले "आँसू अपनी भीरुता और उसको मह
पर आ गये। बिरजू की माँ ! ईश्वर मुझे इतनी हिम्मत दे देता कि
जाकर उसके चरणों में अपनी भीरुता की क्षमा माँग लेता तो कृत
हो जाता। फिर भी तू उसे कहना कि उस भावात्मक नारी से अपनी दे
अभी अन्धी बहन ने क्षमा माँगी है। जिस दिन ईश्वर उसे हिम्मत
देगा उस दिन वह जरूर उसके पाँवों को अपने आँसुओं से
आयेगा। "बहन तू भरोसा नहीं करेगी वे बड़ी देर तक घुटनों में सि
छुपाए रोते रहे, रोते रहे।"

सावित्री वहाँ से चली आयी।

द्वार पर हलवाहा खड़ा था। उसके पीहर का हलवाह था।
वर्षों में वह दो-तीन बार मैके गयी थी। ज्यादा दिन तक न रह पा
थी। ससुराल के इतने बड़े घर को अकेली सास के भरोसे नहीं छो
जा सकता था। ढर सारे पशु और इस पर खेती-बाड़ी का काम। प
वह गयी और आशा के विपरीत जल्दी लौट आयी। फिर उसका म
भी वहाँ नहीं लगता था। वहाँ कम-स कम इस बात को पचपन
भी नहीं थी कि उसका पति उसे छोड़कर क्यों चला गया ? सभी ना
थे कि उसका अपने पिता से झगड़ा हो गया था या वह भीतर से दुर
हार न पाया इस भय से भाग गया था पर उसके पीहर की भगि
और बुआयें उसे इस प्रश्न को लेकर अनेक सवाल किया करती थी
पुरोहित ने शास्त्र के अनुसार समपाठ जिसमें भी बना लिये थे। वे लिखि
और पूछे लिखे खूब रस लेकर सुनाये जाते थे विवरण उस समय कर
तब उसका मन बेचैन हो जाता था। उस पुरुष-सी मालूम होता भी
वह सोचती थी कि लोग शास्त्र को अनुमान से पकड़ते थे। बेटा करते

उसके तीसरे दिन बंसती की भेंट सावित्री से फिर हुई। सरवर पर घाट था। दोनों सखियाँ पानी भरने आयी थीं।

"क्या हाल है बसंती ?" घड़ा रखती हुई सावित्री बोली।

'सच कहूँ या झूठ ?

"सच। लगता है कि तू मेरी सास के कहने को बुरा मान गयी।" सावित्री ने झट से प्रश्न किया।

'नहीं बहन! मैं अब किसी का भी बुरा नहीं मानती हूँ। और तेरी सास का बुरा मुझे उस समय बहुत लगा था जब सेठ गोपीचंद ने उनको एक दाना अन्न का तो नहीं दिया पर बातें हजार सुना दीं। वह घर आकर रोने लगे। 'और वह बुड्ढा ऐसा है न उन्हें देखकर अजीब-सी हरकत करने लगा। उनकी नाक आंखों में देखकर उन बदमाशों ने काट दी इसमें उनका क्या कसूर है ? 'मुझे अपने दुख से अधिक उनकी चिन्ता है। मैं उन्हें रोते नहीं देख सकती। बुरे दिन किसके नहीं आते ? जो भी घमण्ड से सिर ऊँचा करता है ईश्वर उन्हें नीचा दिखाये बिना नहीं रहता। वह उसका गर्व चूर करता है बहन!

"तू ठीक कहती है। हाँ एक बात बता तूने अपने पति को तो इस लेन-देन के बारे में नहीं बताया ?"

"उन्होंने कई बार पूछा पर मैंने नहीं बताया। वह दुखी हो गये। अपने आपको कोसते हुए बोले कि आज मेरा तप इतना कमजोर हो गया है कि मेरी घरवाली भी मुझसे बात छुपाने लगी। 'तो बहन मैं डर गयी। मर्द का मन ठहरा। कहीं उल्टी समझ बैठे तो ? इसलिए मैंने तेरा नाम ले लिया। तेरा नाम लेते ही वह एक बार चौंके। चौंकना भी

वाजिब था। दुश्मन की ऐसी कृपा इस गाँव में अब कहीं भी न देखी जाती है। वह कुछ देर तक पत्थर के देव की तरह बैठे रहे। मैं उन्हें अचरज से देखती रही। उनकी आँखें आँसुओं से भर आयीं।

मैंने पूछा' 'आप रोते क्यों हैं ?'

वह आँसू पोंछकर बोले, "आँसू अपनी नीचता और उसकी महत्ता पर आ गये। बिरजू की माँ ! ईश्वर मुझे इतनी हिम्मत दे देता कि मैं जाकर उसके चरणों में अपनी नीचता की क्षमा माँग सकता तो कृतार्थ हो जाता। फिर भी तू उसे कहना कि उस नालायक भाई ने अपनी देवी जैसी अच्छी बहन से क्षमा माँगी है। जिस दिन ईश्वर उसे हिम्मत दे देगा उस दिन वह जाकर उसके पाँवों को अपने आँसुओं से धोने आयेगा। "बहन तू भरोसा नहीं करेगी" वे बड़ी देर तक घुटनों में सिर छुपाए रोते रहे रोते रहे।"

सावित्री वहाँ से चली आयी।

द्वार पर हरकारा खड़ा था। उसके पीहर का हरकारा था। इन वर्षों में वह दो-तीन बार मैके गयी थी। ज्यादा दिन तक न रह पायी थी। ससुराल के इतने बड़े घर को अकेली सास के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता था। ढर सारे पशु और इस पर खेती-बाड़ी का काम। इस बार वह गयी और आशा के विपरीत जल्दी लौट आयी। फिर उसका मन भी वहाँ नहीं लगता था। वहाँ कम-से-कम इस बात की चर्चा जरा भी नहीं थी कि उसका पति उसे छोड़कर क्यों चला गया ? सभी जानते थे कि उसका अपने पिता से झगड़ा हो गया था या वह जीवन से दुःखी होकर घर से भाग गया था पर उसके पीहर की सखियाँ और बुआएँ उसे इस प्रश्न को लेकर अनेक मजाक किया करती थीं। कुरेद के कारण के अनुसार मनगढ़न्त किस्से भी बना लिये थे। वे विचित्र और झूठे किस्से खूब रस लेकर सुनाये जाते थे विशेषतः उसे सुना करके तब उसका मन बेचैन हो जाता था। उसे घुटन-सी महसूस होती थी। वह सोचती थी कि लोग सत्य को अनुमान न पकड़ने का चेष्टा करते हैं

और उनके हाथ एक पूत आ जाता है।

उसकी सखियाँ प्रायः उसके पति को लेकर ही बातें बनाती थीं। चूँकि अब उनका स्वभाव काफी गम्भीर हो गया था और शील उसका संगी इसलिए उसे पिछली बातें जरा भी पसन्द नहीं आती थीं। वह पीहर में आज अपनी माँ के पास बैठती थी और उसे बार-बार यह दिलासा देती रहती थी कि उसका जमाई एक-न-एक दिन लौटकर जरूर आयेगा।

और आज फिर उस हरकारे को देखकर उसने उसकी बड़ी आव भगत की। पूछा "कहाँ आये हो भैया?"

"माँ ने मुझे बुलाया है।"

"क्यों? उनकी सेहत तो ठीक है।

"हाँ। सब कुछ है। मुझे बहुत-बहुत कहकर बुलाया है। माँ बड़ी प्यार करती है। बार बार कहती है कि मुझे तुम्हारी भी बड़ी चिन्ता है।"

"माँ से यह कहियो कि उसकी जरा भी चिन्ता न किया करे। मुझे कसाई के हाथ नहीं बेची है। मैं यहाँ खूब आनन्द में हूँ। सास कौशिल्या जैसी है।"

"किन्तु?"

"यह कीजो कि वह इतने बड़े घर को किसके आसरे छोड़कर आवे। सास बूढ़ी हो रही है। पशु बढ़ रहे हैं। भाई बड़ा पंचाल नया हुआ है यहाँ माँ को धीरज बँधा दीजो। मेरी ओर से बहुत-बहुत प्यार करना कहियो।

हरकारा दूसरे दिन चला गया।

× × ×

"सुना बहू।"
"क्या ?
"सौदा वापस आ गयी है।"
"क्यों ?"
"कहती है कि मेरा मन वहाँ नहीं लगा।"
"मैंने पूछा कि फिर यहाँ क्या करेगी ?"
"कह रही थी कि अपना पुराना धंधा वापस शुरू करूँगी। दो दिन की जगह एक दिन लगाऊँगी। मैं वापस बरतन चमकाऊँगी।"

मैं उनसे मिलूँगी। सावित्री ने माँ से कहा।

माँ चौंककर बोली "ना बहू ना उसका चाल चलन अच्छा नहीं है। वह शरीफ की जोगी नहीं है।"

"तो क्या हुआ आपको मुझ पर तो भरोसा है।"

"है ठीक कहती है। पर काले के पास गोरा बैठे रंग न बदले पर अक्ल जरूर बदल जाती है।

फिर आप यकीन रखें कि सौदा ठीक हो जायेगी उसके दुर्गुण गुणगण बन जायेंगे।" सावित्री ने केवल माँ की बात का उत्तर दिया।

"लेकिन ?"

"माँ जी! सौदा एक अच्छी स्त्री है। उसमें कोई दुर्गुण नहीं है। यहाँ के लोग हर इनसान के बारे में अनुमान से रिश्ते — जोड़ते
हैं। सच्ची बात कहूँ सौदा ने बदनामी पायी तो आपके बड़े बेटे के
कारण। उसने अपने सिन्दूर को पोंछा तो आपके बड़े बेटे के कारण पुलिस
की तो आपके बड़े बेटे के कारण। माँ जी! अब एक अजीब चीज

है। ईश्वर बचाये इनसे, बस जिसको यह आग लग जाती है उसे किसी का भी डर नहीं रहता।

माँ भौंचकी रह गयी। उसके लिए यह नया सत्य था। क्या प्रेम इतना शक्तिमान होता है? फिर भी माँ ने अपने को संभाला। ठीक उसी तरह जिस तरह डूबती नदियाँ अपने को बचाने का अन्तिम दम तक प्रयास करती हैं।

"लेकिन एक पति के होते हुए दूसरे पुरुष से प्रेम करना अच्छे सदाचार नहीं हो सकते।"

"उसने ऐसा कहाँ किया? उसने या उसके पति ने दोनों में से एक-न-एक को छोड़ दिया था। छोड़ने के साथ सम्बन्ध समाप्त हो गया।

"लेकिन हमारा धर्म?

"धर्म व्यक्ति का दूसरा होता है और हमारा अलग। उनकी जाति में पति को छोड़ कर नये रिश्ते करना कोई अधर्म नहीं। साथ ही धर्म आत्मा के सुख के लिए है न कि दुःख के लिए।"

माँ ने अपने मस्तिष्क पर जोर डाला और बोली "लोग कहते हैं कि उसने खुद अपने पति को छोड़ा था।"

"नहीं माँ एक बार आपके छोटे बेटे ने मुझे बताया था कि एक रात उसका पति शराब पीकर आया और उसे मार-मार कर घर से निकाल दिया क्योंकि उसका किसी अन्य स्त्री से खराब सम्बन्ध था।"

"मैं नहीं जानती।" माँ ने भोलेपन से कहा।

"माँ जी आप शायद यह भी नहीं जानतीं कि उसने आपके बड़े बेटे की याद में एक पेड़ भी लगाया है। उस पेड़ को गहर-गम्भीर करने के लिए वह क्या नहीं करती है?

"सच!"

आप अपनी आँखों से देख लें। आँखों देखी झूठी नहीं हो सकती।"

"मैं कल जरूर देखूंगी।"

उसी रात जब सारा गाँव थक कर सो गया तब कोहरा था बर्फीला

स्वर गूँज उठा। वह मूमल गा रही थी। अपने प्रियतम महेन्द्र की प्रतीक्षा में व्याकुल उस प्रेम दीवानी मूमल गीत दर्द और विरह-व्यथा से परिवेष्टित यह गीत आज भी विरहाकुल रमणियों के हृदय का संगीत बना हुआ है—

घोड़ो राणो सावलियै रो मेह
मूमल आभा बीजली
बरसण लाग्यो मेह
मचकण लागी बीजली
घोड़ो राणो राय चम्पे रो फूल
मूमल केतू कामठी
महकण लाग्यो चम्पे रो फूल
लचकण लागी केतू कामठी
घोड़ो राणो कायलिये री दोव
मूमल मिसरी बजार री
घोड़ो राणो मोतीड़े रो हार
मूमल गला री धुकधुकी

गीत का अर्थ बड़ा मीठा था। सावित्री उस गीत के मर्म को समझ रही थी। सन्नाटे में गूँजता हुआ गीत उसे अपने पति के वियोग की पीड़ा का स्मरण दिला रहा था। गीत के भावों में परस्पर इतना तादात्म्य था कि उनको अपने से अलग नहीं किया जा सकता फिर भी मूमल महेन्द्र से अलग हो गयी मैं अपने पति से अलग हो गयी। हाय दुर्भाग्य।

गीत अब भी अनवरत रूप से गाया हुआ था।

सावित्री को लगा कोई उसके समीप ही कह रहा है—सुन गौर से सुन—घोड़ा राणा सावन का मेह है तो मूमल उसमें चमकने वाली बिजली। घोड़ा राणा चम्पे का फूल है तो मूमल केतकी के पेड़ की डाली सुकुमार। घोड़ा राणा मोती का आजन है तो मूमल उस की ढिरी।

मोसा राणा मोतियों का हार है तो मूमल गले का गहना गुलगुली। इतना सहारा। इतना मेल। फिर भी अनमनाव। आज अगर उसका पति उसके पास होता तो वह उसके गले में अपनी बाहें डाल कर कहती—मुझे अकेले मत छोड़ना। हाय बेचारी मूमल अपने राणा महेन्द्र की प्रतीक्षा में मर गयी।

“निर्मोही! सावित्री ने मन-ही-मन मुझे कहा “ये मर्द सबके सब निर्मोही होते हैं। पत्थर की तरह इनका दिल होता है। कैसे अपनी बहुओं को छोड़कर चले जाते हैं। आज सावित्री को बार-बार मेरी याद सताने लगी। वह बिस्तरे पर करवटें बदलती रही। उसके अंग-अंग में एक अनिर्वचनीय पीड़ादायक सुख लहरें मारने लगा। धीरे-धीरे वह रोती रही। उसे हमारी यादें सताने लगी। उस दिन वह काफी रात गये जागती रही फिर वह अपने आपको समझा कर यह धीरज देकर कि यह सब विधि के लेख हैं सो गयी।

सुबह का काम खत्म करके वह तोड़ा के यहाँ गयी। तोड़ा ने अपने घर को वापस लीप-पोत लिया था। वह अभी उस पेड़ को पानी दे रही थी जो पेड़ उसके प्रेम की स्मृति का प्रतीक था।

तोड़ा पल भर मूक खड़ी रही। उसकी भंगिमा से लग रहा था जैसे वह उसे पहचानने की चेष्टा कर रही है। सावित्री भी उसके सामने बिलकुल चुप खड़ी थी। एकाएक तोड़ा अपने होठों पर मुस्कान बिखेरती हुई बोली “अरी तू सरपंच की बहू।” “ठीक-ठीक” उसने हल्की किलकारी मारी और पुनः बोली “तू बहुत बदल गयी है मेरी बहन!

“तू भी। पर मैं तुझे पहचान तुरन्त गयी।” दोनों सखियाँ पास-पास बैठ गयीं। सावित्री ने इधर-उधर की बातें करके पूछा “और कोई नया समाचार?”

तोड़ा उसका प्रश्न समझ गयी।

क्षणिक मौन।

सावित्री की आँखों में वेदना तैरने लगी। तोड़ा लम्बी आह छोड़कर

बोली "मैं झूठ नहीं बोलूँगी। मुझे शरण नहीं मिला। कई बार ढूँढा भी। कुछ पता नहीं मिलता। बड़ा बावला है। जरूर सोचता होगा कि अब घर कौन सा मुँह लेकर जाऊँ!'

सावित्री की आँखें भर आयीं। विचलित स्वर में वह बोली "लीला! रात दिन मेरी आँखें उसके दर्शन के लिए तरसती रहती हैं। मैं उसके वापस आ जाने के लिए क्या-क्या कामना नहीं करती! सभी देवी-देवताओं को मानती हूँ। व्रत-उपवास करती हूँ। तन-मन को पावन रखती हूँ। पर अब लगता है कि सब व्यर्थ हो रहा है। आशाएँ टूट रही हैं। मन बुझी बैठ रही है।"

लीला को अपना देवू याद हो आया। उसने कहा कि ईश्वर बड़ा निर्दयी है। वह किसी को अधिक सुखी नहीं देख सकता। वह आदमी को बड़े अंधेरे में रखता है। उसे क्या घटने वाला है इससे बड़ा बेखबर रखता है। किसी के साथ कुछ न कुछ विघ्न लगाये रहता है। कौन जानता था कि मेरा देवू मुझसे इस निर्दयता से छीन लिया जायेगा। कौन जानता था कि सागर में स्नान करना ही उसका 'काल' है। इस पानी में ही उसकी मौत छिपी हुई है।

लीला की आँखें भर आयीं! उसने अपने आँसू से आँखें पोंछी और बोली "तू नहीं जानती कि उस दिन मैं कितनी खुश थी। हम लोग बहुत देर तक सूने आसमान के नीचे घूमते रहे। मैंने ही उससे कहा था कि आज हम और नहायेंगे किन्तु होनी कुछ और ही थी। बात अब भी सपने की तरह लगती है। अब भी रात के सन्नाटे में भ्रम होता है कि वह मेरे पास आता है। मैं उसे गीत सुनाती हूँ। वह मुझे बाँहों में भर कर कहता—"नहीं लीला मायूसी मत गाया कर, इसके दर्द को मैं नहीं सह सकता। पर मैं उसे वह ही सुनाती हूँ। वह दर्द में खो जाता है। रो पड़ता है। बस उसकी बहुत याद आयी। लगी कि गीत स्वयं फूट पड़ा।"

"मैं भी तुझे कहूँगी ऐसा गीत मत गाया कर। यह गीत तेरे विनाश

दूसरों को भी पीड़ा पहुँचा सकता है। कुछ अभागिनें और भी हैं जिनके प्रीतम उन्हें छोड़ कर परदेश चले गए हैं। जो रात भी सांय-सांय में अकेले आँसुओं से अपने ओढ़नों को भिगोया करती हैं।

"क्या करूँ बहन मैं टेडू को नहीं भूल सकती। वह सांस के साथ ही इस शरीर से निकलेगी।" उसने एक लम्बा सांस लिया "तू नहीं जानती कि टेडू कितना प्यारा था। मैंने कभी भी उसे अनुचित काम के लिए नहीं कहा। वह मुझ पूछता था कि शादी के बाद क्या होगा?"

मैं हँसकर कहती "होगा क्या? मैं तुम्हारी आरती उतारती रहूँगी और तेरी माला जपती रहूँगी। आने वाली बहू को पास भी कभी नहीं फटकने दूँगी।"

वह कहता "मुझे तेरे सिवाय कोई दूसरी ही नहीं जँचती है।"

'क्या पता आने वाली बहू तुझ पे क्या जादू करदे। और सावित्री तुझे सच कहती हूँ कि शायद तू उसे अपने में रमा लेती वह मुझसे भी लग जाता। वह सरदार की तरह डरपोक नहीं था। वह कभी किसी से नहीं डरता था। बड़ा दिलेर था। वह तुझे छोड़ कर कभी नहीं जाता। कौन ऐसा निर्मोही होगा जो तुझ जैसी सुन्दर, और साध्वी स्त्री को छोड़ कर राह राह की ठोकरें खायेगा। वे निकम्मे आदमी के काम हैं। और यह भी सही है फिर टेडू मुझसे बहुत दूर रह कर भी मेरे प्रेम की कद्र करता।"

सावित्री एक नई मनोदशा में घिर गई। उसके कल्पना-लोक में टेडू का चित्र उभरने लगा। एक सुन्दर बलिष्ठ युवक। निर्भीक और तेज। जो उसके प्रेम में डूबा रहता है। उसकी बाहों में इतनी ताकत है कि वह उस सरदार की तरह पल भर में ही नहीं बिसराता बल्कि उसे पल भर पास रखता है। गर्म आलिंगन और गर्म स्पर्श। एक अकल्पनीय उत्तेजना में वह खो-सी गई। बड़ी देर तक वह प्रफुल्लित बैठी रही। उसे अचानक यह अनुभव हुआ कि उपर्युक्त दृश्य नीरस है। उसमें पहले की तरह जान बाकी नहीं रही है। सचमुच उसका मन भर गया है।

"क्या सोचने लगी ?" लीला ने पूछा।

"कुछ नहीं।" साथ ही वह उदास हो गई। उसने क्यों एक ऐसी दुष्कल्पना की कि जिससे उसके सतीत्व को लांछित होने का अवसर मिलता है। वह एक विवाहिता है। मन में अटूट विश्वास रखने वाली। उसने अपने जेठ को लेकर ऐसी पतित बातें क्यों विचारी ? वह ईश्वर से अभ्यर्थना करने लगी कि वह उसे इस पाप के लिए क्षमा कर दे। उसकी आँखें कुछ गीली हो गईं।

"तुम्हें मेरी बातों से दुख हुआ क्या ? लीला ने फिर पूछा।

"नहीं।"

'मुझे क्षमा करना तेरा पति सचमुच एक डरपोक इन्सान है। वह जिन्दगी और उसके टेढ़े-मेढ़े रास्तों से भागता है।

"अच्छा हो या बुरा मेरे जैसी अभागिन स्त्री के लिए इससे बढ़ कर और क्या पाप हो सकता है कि वह अपने पति की निन्दा सुने। लीला ! कुछ बातों में भाग्य ही सर्वोपरि है। मैं इसे भाग्य की ही बात ही मानती हूँ। जिस तरह मुझे जेठ जी के सुख का भाग्य न होगा।"

लीला को कोई जवाब नहीं सूझा।

सावित्री गम्भीर हो गई। वह उस पेड़ को देखती हुई धीरे धीरे बोली 'तूने यह पेड़ लगा दिया है। इस पेड़ में तू तेरे प्रेम की भी आत्मा का वास मानती है किन्तु मुझे बता कि क्या तेरा देवू तुझे वापस मिल जाएगा ? नहीं ये सब मन के धोखे हैं। इसमें सच्चाई नहीं है। इसकी कोई नींव नहीं है।"

लीला ने प्रतिवाद किया "यह नहीं है कि वह मुझे न मिले किन्तु आत्मा का सन्तोष भी एक चीज होता है। मैं रात के समय इस पेड़ के पास बैठ जाती हूँ। गुनगुनाती हूँ। एक छाया-सी मेरे पास आकर बैठ जाती है। वह छाया मेरे देवू के बिना और किसी की नहीं हो सकती।

"तू ठीक कहती है एक दिन मैंने स्वप्न में एक सपना देखा। मुझे मेरा देवू कह रहा था—तू मुझे छोड़ के चली गई। देख मैं प्यासा

वृक्षों को भी पीड़ा पहुँचा सकता है। कुछ अभागिनें और भी हैं जिनके प्रीतम उन्हें छोड़ कर परदेश चले गये हैं। जो रात की सांय-सांय में अबोल आंसुओं से अपने गोदड़ों को भिगोया करती हैं।

"क्या कहूँ बहन मैं तेजू को नहीं भूल सकती। वह सांस के साथ ही इस शरीर से निकलेगी।" उसने एक लम्बा सांस लिया "तू नहीं जानती कि तेजू कितना प्यारा था। मैंने कभी भी उसे अनुचित काम के लिए नहीं कहा। वह मुझ पूछता था कि शादी के बाद क्या होगा?"

मैं हँसकर कहती, "होगा क्या? मैं ठकुरी सातिन बनकर बसाती रहूँगी और तेरी माता जपती रहूँगी। आन वाली बहू को जरा भी कष्ट नहीं झेलने दूँगी।"

वह कहता "मुझे तेरे सिवाय कोई दोखती ही नहीं सकती है।"

"क्या पता आने वाली बहू तुझ पे क्या जादू करदे। और सावित्री तुझे सच कहती हूँ कि शायद तू उसे अपने में रमा लेती वह मुझे भूलने भी लग जाता। वह सरवण की तरह डरपोक नहीं था। वह कभी किसी से नहीं डरता था। बड़ा दिलेर था। वह तुझे छोड़ कर कभी नहीं जाता। कौन ऐसा निर्मोही होगा जो तुझ जैसी सुन्दर और साध्वी स्त्री को छोड़ कर राह राह की ठोकरें खायेगा। ये निकम्मे आदमी के काम हैं। और यह भी सही है फिर तेजू मुझसे बहुत दूर रह कर भी मेरे प्रेम की कद्र करता।"

सावित्री एक नई मनोदशा में घिर गई। उसके कल्पना-लोक में तेजू का चित्र उभरने लगा। एक सुन्दर बलिष्ठ युवक। निर्भीक और तेज। जो उसके प्रेम में डूबा रहता है। उसकी बाहों में इतनी ताकत है कि वह उसे सरवण की तरह क्षण-भर में ही नहीं छिपाता बल्कि उसे रात भर थामे रहता है। गर्म आलिंगन और गर्म स्पर्श! एक अकल्पनीय उत्तेजना में वह खो-सी गई। बड़ी देर तक वह अर्धविस्मृत बैठी रही। उसे अचानक यह अनुभव हुआ कि उपर्युक्त द्वन्द्व नीरस है। उसमें पहले की तरह पर्त जमा नहीं आती है। सचमुच उसका मन मर गया है।

"क्या सोचने लगी ?" लीना ने पूछा।

"कुछ नहीं।" साथ ही वह उदास हो गई। उसने क्यों एक ऐसी दुष्कल्पना की कि जिससे उसके सतीत्व को लांछित होने का अवसर मिलता है। वह एक विवाहिता है। धर्म में बहुत विश्वास रखने वाली। उसने अपने पेट को लेकर ऐसी पतित बातें क्यों विचारी ? वह ईश्वर से प्रार्थना करने लगी कि वह उसे इस पाप के लिए क्षमा कर दे। उसकी आँखें कुछ गीली हो गई।

"तुम्हें मेरी बातों से दुख हुआ क्या ?" लीना ने फिर पूछा।

"नहीं।"

मर रहा हूँ तीन दिन से मुझे कोई पानी नहीं पिला रहा है।" और वृक्ष पेड़ सूखा-सूखा लगा। मैं व्याकुल-व्याकुल हो गई। वृक्ष हर घड़ी वह सूखा पेड़ दिखने लगा। मेरा मन संताप से भर आया। जानती हो मैंने कुछ भी रोटी छोड़ दी। मैंने जीवन को प्रेम पर न्यौछावर कर दिया। मुझे इस पेड़ के लहलहाने के सिवाय कुछ भी नहीं चाहिए। और सपना सही था इस पेड़ को तीन दिन से पानी नहीं दिया जा रहा था। यह क्या है ? मैं इसे प्रेम का सत्य समझती हूँ।"

सावित्री ने कोई जवाब नहीं दिया। उसने मन ही मन इतना अवश्य कहा दीवानी है दीवानी।

और वह उस बावली से फिर मिलने का वायदा करके चली आई।

× × ×

उस दिन भी गर्मी से झुलसी जा रही थी। बैशाख की अखा-तीज (अक्षय तृतिया) आ रही थी। सावित्री गेहूँ-बाजरी का खिचड़ा कूट कर आई थी। उसकी चोली पसीने से भीगी हुई थी। कच्चा रंग होने के कारण उसके शरीर पर लाल-लाल धारियाँ बन गई थीं। उसने मटके का साथ सिर पर रखा टोपिया (एक तरह का बर्तन) उतारा। मुँह से फूँक मारती हुई वह बोली "आज गर्मी प्राण ले रही है। खिचड़ा कूटा तो जरूर ही है पर प्राण निकलने बाकी नहीं रहे।"

"तू तो वहाँ खिचड़ा कूट रही थी और मैं केवल यहाँ पाँव पसारे पड़ी थी फिर भी जी बड़ा ही व्याकुल रहा था।" माँ ने भी कहा।

उसने एक पंखी हाथ में ले ली। पंखी पर मोटा कपड़ा चढ़ा हुआ था। वह उससे हवा करने लगी। ऊपर भी सोए हुए राजा पर पंखा चल रही थी।

वह ! मल्लिका ने देखा—"माँ आज अत्यन्त प्रसन्न है।

है।"

'आज चौरसी फिर आयी थी। मुझे अपना दुखड़ा सुनाते-सुनाते रो पड़ी। मैंने उसे धीरज बंधाया। कहने लगी 'दुःख में अपने पराये हो जाते हैं। मैं अपनी मौसी सासू के पास गयी थी। आप विश्वास नहीं करेंगी यह वही मौसी सासू है जो हमारे यहाँ रात-दिन सारे कबीले के साथ पड़ी रहती थी। हमारे यहाँ खाती-पीती थी। यहीं से उसकी बेटी के ब्याह का सारा प्रबन्ध हुआ था। किन्तु आज हमारा वक्त बुरा हुआ हमें उसकी मदद की जरूरत पड़ी तो उसने साफ पल्ला झाड़ दिया। जैसे हमने उस पर कोई उपकार किया ही नहीं है।"

"समय-समय की बात होती है।" मैंने धीरे से कहा।

'लोग ठीक कहते हैं कि इस कलियुग में अपनों से ज्यादा पराये काम आते हैं मित्रों की जगह दुश्मन जरूरतें पूरी करते हैं। आप हमारी उस दिन मदद नहीं करतीं तो भूख से बच्चे बिलबिलाते हुए मर जाते। वह तो रोने लगे। शर्म लगे कि कौन-सा मुँह लेकर मौसी के पास जाऊँ, कौन-सी शान से बहन मालविका को अपना यह काला मुँह दिखाऊँ।"
मैंने उसे आश्वासन दिया और कहा कि मौका हो कहना कि मुझसे कौन सी बात छुपी? मेरी माँ मेरी धाय थी आपकी मालती (मर्नी) थी। हम दोनों बचपन के संग-संग गुड्डे-गुड़ियों का खेल खेलती थीं। कभी वह तो दुश्मन के मन ही समझा कि हरगुन के कारण मन में गाँठें पड़ गयी।
" "और यह भी कहती है कि अगर मेरी बहन जिन्दा होती तो वे बातें भी नहीं पड़ने देती। वह बहुत ही अच्छे दिल की थी।"

उसने मेरे पाँव पकड़ लिये। रोती हुई बोली "मैं इन सबकी ओर से क्षमा माँगती हूँ। आज इस घर में हमारी कोई मदद करनेवाला

नहीं है। कितना बुरा समय आ गया है कि कटी हुई अँगुली पर कोई पेशाब भी नहीं करता।" 'मुझे उस पर दया आ गयी। मैंने उसे बीस पाँचकी ध्यान और दिया। वह कृतार्थ हो गयी।

"दादा जी उठ गये थे। सावित्री उन्हें घूमने लगी, माँ विचारों में खोयी रही। उमस बढ़ती जा रही थी। उमस से घबरा कर माँ बोली "आज की गरमी जानलेवा है। जी घबरा रहा है।"

सावित्री ने गंभीर-स्वर में कहा माँ जी एक बात कहूँ

माँ ने उसकी ओर देखा। वह एकटक माँ को देखकर बोली "मेरा विचार है कि एक प्याऊ खोली जाय—ससुर जी के नाम से। यहाँ से दो कोस पर जो चौराहा है वहाँ पानी की बड़ी कमी है। लोग प्यास से मुरझाते हैं। बुद्धिमान काका-सा मनसुरा को कह रहे थे कि मैं चंदा इकट्ठा कर रहा हूँ बस एक आदमी की जरूरत है। कोई पन्द्रह रुपये माह का खर्च है। मैं समझती हूँ कि यह भार हम अपने ऊपर उठावें। चीता को इसके लिए तैयार किया जाय उसकी सहायता हो जायेगी और ससुर जी की आत्मा को शान्ति मिलेगी। यह दो तरफा धर्म होगा।

मेरी माँ ने उसे स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन सावित्री खुद चरनी के यहाँ गयी। बाहर ही चीता मिल गया। उसका चेहरा अत्यन्त विकृत और घिनौना हो गया था। उसकी आवाज भी विचित्र हो गयी थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह नाक से बोल रहा हो। आकृति पर उदासी के बादल छाये हुए थे।

सावित्री ने झट से घूँघट निकाल लिया। दुबके एक कोने में खड़ी हो गयी।

चीता झट से बाहर खिसक गया। सावित्री उसे रोकने के लिए सिसकारी देती रही—छिः छिः। यह सिसकारी रोकने के लिए कही गयी। किन्तु चीता नहीं रुका। वह चला गया।

सावित्री ने उसके जाते ही चंदनी को पुकारा। चंदनी हुलसित

होकर आयी।

"आ बहन आ, आज रास्ता कैसे भूल गयी ?" उसके स्वर में अत्यन्त आदर था।

"रास्ता नहीं भूली हूँ। काम से ही आयी हूँ। तेरे उनको रोकना चाहा पर वह रुके ही नहीं।

"बहन ! उनमें एक अजीब-सी आदत आ गयी है। किसी से बोलते नहीं। कभी हँसते नहीं। हाँ, कभी-कभी रात को रोते जरूर हैं। मैं पूछती हूँ तो कहते हैं कि मैं अपने भाग्य को रो रहा हूँ। मैं समझती हूँ इससे कोई लाभ नहीं होगा। लाभ पुरुषार्थ करने से होगा।"

"मैं इसी बाबत तुमसे मिलने आयी हूँ। बात यह है कि गाँव की तरफ से एक प्याऊ खुलने वाली है। उसमें एक आदमी को रखना है। उस आदमी की तनखा १५ रुपये होगी। ये रुपये लोग देंगे। हम चाहते हैं कि तू जीता को इसके लिए तैयार कर दे। घर में कुछ-न-कुछ आयेगा ही।"

चंदली कुछ देर मौन रही। फिर वह गद्गद स्वर में बोली, "तुम लोग देवता हो। पता नहीं, ससुरजी ने आपसे क्यों झगड़ा कर लिया ?"

"छोड़ो पुरानी बातों को। फिर बात पक्की रही न ?

"रही।"

सावित्री वहाँ से लौट आयी। उसने देखा कि घर में दस-पन्द्रह जने बैठे हैं। यह सभी उसके कबीले के थे। वे इस बात की शिकायत करने आये थे कि आप लोग चौधरी हरसुख के परिवार की मदद क्यों करते हैं। यह ठीक नहीं है। इससे बापू की आत्मा नरक में दुःख पायेगी।

"'और आगे एक लड़के ने कहानी कहने में हद कर दी। रोता हुआ वह बोला, "कल रात बाबा ने मुझे सपने में कहा था कि तेरी बड़ी माँ और चाची चुपके-चुपके बैरी दुश्मन को दूध पिला रही हैं, इससे मेरी आत्मा बहुत कष्ट पाती है, आप सभी लोग आकर इसे रोकें।'

सावित्री ने सुना। सुन कर वह घूँघट में मुस्करा पड़ी। उस चंदली

अपने लोग हैं। आज उसका बाप जेल में है। उसका बैल-जमीन बि
गयी है। वह खाने-दाने का मुँहताज है। ऐसी स्थिति में कौन है उसक
अपना। ये सभी बुरी नीयत के हैं। इनकी नीति है चोर को कहे चोर
कर कुत्ते को कहे भुक (भौंकना)। समझी बात। क्या ये लोग न
जानते कि यह बेचारी अकेली रात-दिन खेत में काम करती है। क्य
इनके दिल में दया नहीं जागती। फिर मैं कौन हूँ अपने। अपने हैं केवल
अपने दो हाथ अपनी शक्ति और अपना भाग्य।

"तू ठीक कहती है बेटी।

"हम सीता जी को अपनी प्याऊ में रखेंगे।'

"ठीक है।"

"यह उनकी सचमुच बड़ी हार होगी।"

दोनों ने यह निश्चय कर लिया। सावित्री ने माँ की दुर्बलता क
पकड़ लिया था और वह यह विश्वास बैठा रही थी कि यह सब बा
बहू को नीचा दिखाने के लिए कर रही है। हालाँकि वह पराये मन
सीता के परिवार की मदद कर रही थी।

× × ×

अच्छा सीता निराश होता गया।

उसकी गिरती हुई हालत और अपने शरीर के प्रति लापरवाही
देखकर लोग उसे पागल कहने लगे। कहने लगे कि बेचारा हार ग
गया है। कोठी खाली होने के साथ मन भी अन्न से खाली हो गया है।

उस दिन सावित्री के पास चंदली आयी थी।

वह रोकर कहने लगी "अब मैं क्या करूँ बहन, वह मानते ही नहीं। कहते हैं कि आदमी को एक हद तक गिरना चाहिये। हर चीज की एक सीमा होती है। मैं उनके एहसानों से आगे भी बहुत दब गया हूँ अब अधिक नहीं दबना चाहता।"

"यह अच्छा है। उसे बाबू जी के पास भेजना बाबू जी समझा देंगी।'

मैं उनसे कहती हूँ कि माँगने पर कितने दिन मिलेगा? आखिर पेट के लिए हाथ-पाँव चलाने से ही काम चलता। जानती है उन्होंने क्या जवाब दिया। वह आकाश की ओर देखते हुए बोले मैं कुछ भी नहीं जानता। जिसने पैदा किया है वह पालेगा भी। वही हाथी को मन भर और चींटी को कण भर देता है।" मुझ पर पहाड़ गिर पड़ा। ऐसी बातों से पेट नहीं भर सकता।

'आदमी भी क्या करे? समय की ठोकरें उसे तोड़ देती हैं। फिर भी तुम्हें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। उसे समझाती रहो काम कर लेगा।" सावित्री ने चंदली को ढाढ़स बंधाया।

चंदली उस समय चली गयी। जीवा उसकी बात मानने को तैयार नहीं हुआ। वह हर समय ईश्वर और भाग्य की दुहाई देने लगा। पर तीसरे ही दिन बच्चों की बिलबिलाहट और आँसुओं ने उसे झकझोर दिया जैसे आकाश को चीर कर वज्रपात वह निकली हो। वह और उठा। उसने अपने दोनों बच्चे को [illegible] की गले लगाते चूमा। वह निरन्तर रोता रहा। वह भीतर की आग से नीची गर्दन किए बैठा रहा। एकाएक वह चीखता हुआ सा बोला "यह नरक का कीड़ा क्यों जी रहा है?"

चंदली सहम गयी। उसकी आँखों में आँसू छलक आये। वह चुपचाप देखता से उसकी ओर देखती रही। उसके चेहरे की मरघट छायी थी।

बंसली चुप रही।

बच्चा अब भी रो रहा था।

जीवा ने फिर कहा "यह क्यों रोता है?"

"भूखा है।"

जीवा चुप हो गया। भूख का उसके पास भी कोई जवाब नहीं था। वह थोड़ी देर चुप रहा। बाद में बोला "मैं प्याऊ में नौकरी कर लूँगा। और बंसली न इन बातों को मालिकों को नहीं बताया। जीवा ने कहा मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि वह मुझे दूसरे ढंग से मारना चाहती है। दुश्मन को इस तरह जीतना भी एक अनूठा तरीका है। तू मेरी पीड़ा को नहीं समझती। जिन व्यक्तियों के खून का मैं प्यासा था उनके चरणों की धूल हो रहा हूँ अब। यह असह्य है। काश ईश्वर मुझे अपने पास बुला लेता।"

बंसली ने साहस करके बताया "आज जब अपने भी पराये हो गये हैं तब उन्होंने हमारी मदद की। हाथ फैलाना मुझे भी गवारा नहीं।"

"सच अगर इन बाल-बच्चों की चिंता और पेट मोह न होता तो मैं साधू हो जाता।"

"हिम्मत हारने से कुछ नहीं होगा।" बंसली ने अपने दामन के [illegible] आँसुओं को पोंछते हुए कहा।

उसके तीसरे दिन गाँव की सहायता से प्याऊ खोल दी गयी। सुबह-सुबह ऊँट पर पानी की टंकियाँ भर कर आतीं और वहीं पर पड़े एक मटके-मटकियों को भर जाती। जीवा वहीं पर दिन भर बैठा रहता था। इस एकान्त में उसे बड़ी सांत्वना मिलती थी। साँझ का खाना वह अपने साथ लाता था। यहाँ यात्रियों की सुहबत बातों और गप्पों में सारा समय बीत जाता था।

उसकी प्याऊ से थोड़ी दूर पर नयी हस्पताल बन रही थी। उसकी अटकी हुई विशाल इमारत   का केन्द्र थी। [illegible] [illegible] वर्गों के साथ नये हस्पताल की   शि

बस रहा था। स्कूल भी नया बन रहा था। सुना जा रहा था कि स्कूल मिडिल से हाई-स्कूल बन जायेगा।

सेठ मोतीचन्द ने अपने भाई भतीजों को ये सब ठेके दे रखे थे। लोग उसके इस रहस्य को जानते थे और इसका खूब विरोध भी करते थे। कम्युनिस्ट पार्टी के नेता ईश्वरीप्रसाद ने एक दिन ग्राम सभा में इन ठेकों की गुप्त बातों का पर्दाफाश किया—प्रमाण के साथ।

इस प्याऊ पर इन सभी बातों की प्रायः पुनरावृत्तियाँ होती रहती थीं।

दिन गुजरते गये।

× × ×

कर्मठ व्यक्ति की तरह सावित्री का जीवन हो गया। वह प्रभु वन्दना अवश्य करती थी पर वह निष्क्रियता से एकदम भिन्न थी। प्रभु वन्दना में मेरे आ जाने की ही प्रार्थना होती थी।

इस बार उसने सबसे अधिक अन्न पैदा किया था। इसकी अध्यक्षता मिनिस्टर ने स्वयं गाँव की एक आम सभा में की। सावित्री उस दिन खूब प्रसन्न थी। गाँव ने हनुमान बाबा का शृंगार किया था पर हर एक खुशी के पर्व पर माँ का मन मेरे लिए आकुल हो जाता और खुशियाँ आधी हो जातीं। इस बार तीन-चार खेतिहर मजदूरों के साथ बदली भी उसके साथ मेल से काम करता। सभी की उसके प्रति एक ही राय थी कि वह अब सावित्री के घर का अंग है।

किन्तु जब उसको अधिक धन कमाने का पहला पुरस्कार मिला तब उसका मन हर्ष से उल्लसित हो गया और घर आते ही वह विषाद से भर उठी। उसे मेरी याद हो आयी। वह फूट-फूट कर रो पड़ी। दोनों सास बहुओं का बंजारा देखने काबिल था। फिर वह उठी और हनुमान बाबा के मन्दिर चली गयी। उसके आगे सिर टेक कर बोली "दीनबन्धु दीनानाथ! बस एक बार उन्हें मिला दे। मैं उनका दर्शन करना चाहती हूँ। इतने कठोर मत बनो! प्रभु! प्रभु!! वह बहुत देर तक बिसुध ही पड़ी रही।

उस दिन वह खाना भी नहीं खा सकी।

रात का सन्नाटा छा गया था। वह मैदी में बैठी थी। खाट बिछी थी। वह खाट जिस पर कभी मैं सोया करता था। वह उसे देखती रही। उसे लगा कि मैं सोया हुआ हूँ। खेत में थककर लौटा हूँ। बदन थकान से टूट रहा है। वह मेरे पाँव दबा रही है। और दबाती-दबाती वह मजाक करने लग गयी है। मैं झिड़क देता हूँ। वह पत्थर-सी बन जाती है। कहती है "आप बड़े कठोर हैं। मुझे कब सच्चे मन से प्यार करेंगे ईश्वर जाने?" मेरी याद ने उसके हिया को भर दिया और वह रो पड़ी। उसने अपने आप से कहा बस एक बार आ जाय एक बार का ईश्वर मुझे उठाले। अब मैं वियोग नहीं सह सकती।"

वह उस रात सो नहीं सकी।

कभी-कभी वह सांझा के पास चली जाती थी। तब दोनों अपने अप्राप्य प्रभुओं के बारे में बातचीत करती थीं। आज भी साविती उसके यहाँ चली गयी।

सांझा का चरखा निरन्तर गति से चल रहा था। 'गाँधी जी' का वह महान् आदर्श चरखा सांझा के लिए जीवनदाता बना हुआ था। खूब सूत कातती थी और खादी ग्रामोद्योगों को बेच देती थी। जितना पैसा आता उससे पेट भर लेती थी। उसके प्यार का प्रतीक वह पेड़ —— लहलहाने लगा था। उसकी महक से आस-पास की धरती

सुवासित थी।

"क्या कर रही है बहन!" घर में घुसते ही सावित्री ने पूछा।

"जो घट रहे हैं उसे पूरा कर रही हूँ।"

वे दोनों बैठ गयीं।

लीला ने बैठते ही कहा, "तुम्हें एक बात बताऊँ, मामूली बात नहीं है।"

"क्या?"

"जाटों और राजपूतों में भयंकर मैल होने वाला है।"

"क्या कहती हो?"

"सच! सेठ की पोल भी खुल गयी है।"

"कैसे?"

"अरी यह सब किया-कराया उस सेठ का ही काम है। जाटों और राजपूतों में गलतफहमियाँ फैलाकर अपना उल्लू सीधा कर लिया। राजपूत ठहरे अक्खड़! बात बात पर जान देने वाले किसी ने नाक में चढ़ा दिया तो भड़ पड़े। बस अपने पुरखों के यशोगान में मग्न हैं और जाट की बुद्धि ही कितनी? छल-फरेब से कोसों दूर सीधे सरल। उनकी बुद्धि कोई भी मीठी बातों से निकाल सकता है। हरसुख को उसने लोभ लालच देकर यह बखेड़ा कर दिया। और अब तो यह पता चल गया है कि मेरी नाक सर्पों ने नहीं किसी और ने काटी है।"

"किसने काटी है?" सावित्री विस्मित हो उठी!

"यह उसने नहीं बताया। और न कभी बताएगा।"

सावित्री ने इत्मिनान की साँस ली।

"राम-राम, मामला इतने लोग कट मर पड़ गये। इस बात का सारा पाप सेठ को लगेगा। यह पहले ही सच्ची बात बता देता तो खून-खराबी ही क्यों होती?" लीला ने कहा।

सावित्री का मन प्रसन्न न रह सका। एक विचार बिजली की तरह उसके दिमाग में कौंध गया कि उसे एक बार सुगन बीना ने

मिलना चाहिए। उसे कसम दिला देनी चाहिए कि वह किसी भी शर्त पर नाक कटने के रहस्य का उद्घाटन न करे?

"क्या सोचने लगी?" सीता ने उसके मौन को भंग किया।

सावित्री ने चौंक कर कहा, "कुछ नहीं-कुछ नहीं। अच्छा मैं चली फिर मिलूँगी। मुझे एक जरूरी काम याद हो आया।"

वह सीधी सीता के घर पहुँची। सीता खाट पर बैठा हुआ कोई भजन गुनगुना रहा था। उसके दो बच्चे धूल में खेल रहे थे। सावित्री ने पहली बार सीता से सीधी बात की। वह उम्र में मुझसे बड़ा था। इसलिए वह रिवाज के अनुसार उससे बात नहीं कर सकती थी किन्तु आज उसने लाज के घूँघट को चीर डाला। वह अप्रत्याशित उसके सम्मुख आ खड़ी हुई। सीता चौंक गया। वह घबड़ा उठा। जाने को उद्यत हुआ कि सावित्री ने उसे रोका "जरा आप ठहरिये।"

सीता के पाँव जमीन से चिपक गये।

"भाई जी! आज मैं आपसे प्रार्थना करने आयी हूँ।"

"मैं समझ गया तू शायद यह कहने आयी है कि मैं ब्याह पर ठीक समय पर पहुँच जाया करूँ पर आज रोटी बनने में देर हो गयी। छोटे मुन्ने को हल्का सा ताप (ज्वर) है।"

"नहीं-नहीं! मैं यह कहने नहीं आयी हूँ। मैं तो आपको यह कहने आयी हूँ कि आप नाक कटने वाली बात की सच्चाई किसी से भी न कहें। इससे न जाने लोग क्या-क्या सोचेंगे। मैं किसी से भी नहीं कह जाती हूँ पर इन बातों से मेरा रोम रोम सिहर जाता है। मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ।

।" सीता मौन रहा।

"आपने मुझे बहन कहा है। भाई जी! बहिन के सुख के लिए भाई आकाश के तारे भी ला सकता है। मैं आपसे ऐसी ही आशा करूँगी।"

"तू बेफिक्र रह। मैं प्राण रहते हुए इस रहस्य को अपनी जबान

कर नहीं जाऊँगा।"

सावित्री के सिर का बोझ उतर गया। वह कुछ देर चंदमी के पास ठहरी। बच्चे की पूछ-ताछ की और घर आ गयी।

माँ ने आते ही कहा "सुना वह उस सेठ के बच्चे की आज सौंच गयी मिलमोंगे। राम राम वह कितना नीच है। जाटों और राजपूतों को आपस में भिड़ा दिया। आज गाँव में कोई बहुत बड़े आदमी आने वाले हैं।

"आदमी बड़ा स्वार्थी होता है। वह अपने सुख के लिए दूसरे के नुकसान को नहीं देखता। माँ की और के पैसे वाले होते ही ऐसे हैं। इनकी पूरी मनमानी की भूख होती है जो अपने आस-पास के छोटे दुबल निसहाय लोगों को निगल जाने को तत्पर रहती है। यह पैसा केवल बनिये को नहीं, हर जाति के इन्सान में ऐसे अवगुण भर देता है। उसे इन्सानियत से गिरा देता है।"

"मैंने ऐसा बनियापन कभी नहीं देखा। आदमी बहुत नीच हो गया है।

राजा ने देखते-देखते दूध की गिलास से स्नान कर लिया। दूध की फैली हुई लहरों ने उसे बड़ा ही हास्यास्पद बना दिया।

माँ ने कृत्रिम उलाहने के साथ कहा "ये देख इस नटखट को दूध से नहा कर आया है।"

राजा ठुमक-ठुमक कर आ रहा था। वह नया था। उसके पाँवों में माँ ने छोटी पायल पहना दी थी जिससे घुँघरू की मंद-मंद मधुर ध्वनि आ रही थी। दूध की लहरों ने उसके पाँवों को छिपो लिया था इस लिए चरणचिन्ह आँगन में अंकित हो रहे थे।

वह अपनी तोतली भाषा में बोला "बड़ बड़ दूध।"

वह सावित्री को बहु कहता था। उसने बचपन से यही सम्बोधन सुना था।

माँ ने उसका हाथ पकड़ कर डाँटा "कुछ नहीं था हर बड़ी

उजाड़ करता रहता है। क्यों तुम सिपाया जाएँगी एक झापड़ कि सारी शैतानी भूल जायेगा।"

माँ का इतना कहना था कि राजा रोने लगा। जब वह रोता था तब उसके चेहरे पर अपार करुणा भाव उठती की ओर देखने वाला द्रवित हुए बिना नहीं रहता था। माँ द्रवित हो उठी। उसने लपक कर राजा को अपनी गोद में उठा लिया और उसे चूम कर पुचकारने लगी। साथ ही अपनी ओढ़नी से उसके शरीर को पोंछने लगी।

वह कहती जा रही थी "मेरे राजा को किसने डाँटा चुप-चुप-चुप चुप हो जा मेरे साजने।"

गायित्री की आँखों में पावन ममता की रश्मियाँ चमक रही थी।

× × ×

गाँव के कुँए के पश्चिमी मैदान में ग्राम सभा का आयोजन हुआ इस सभा में दो प्रमुख नेता आये थे। एक राजा जी प्रतापसिंह और चौधरी राजाराम। दोनों संसद-सदस्य थे। कांग्रेस में थे। राजपूतों और जाटों के बीच बढ़ती हुई वैमनस्य की खाई को पाटने के लिए इन दोनों ने इधर अथक परिश्रम किया था। जिसका परिणाम यह निकला कि आज मंच पर भीमसिंह का बेटा धर्मसिंह और हरसुख का भतीजा भाई सुखराम दोनों साथ-साथ बैठे हुए थे। बीता नहीं पाया था। उसने कह दिया कि मेरा कोई बैरी नहीं है। आज पहली बार जाट राजपूत साथ-साथ बैठे थे। इस व्यक्तिगत झगड़े पर जो जातीयता का जामा पहनकर दोनों जाति के साधारण लोगों में यह भय बैठा दिया था कि

जब कभी भी किसी का मौका लगेगा वह एक-दूसरे पर वार किए बिना नहीं रहेगा यह क्रम होता चल रहा था।

प्रतापसिंह ने खड़े होकर कहा "यह बहुत दुःख की बात है कि हम इन्सानियत को नहीं इस युग में जातीयता को महत्व देते हैं। और जातीयता को महत्व देने का नतीजा भी हम देख चुके हैं। उसने हमारी शांति को दूर किया। उसने हमारी मिट्टी को खून से रंगकर कलंकित कर दिया। पहले यह गाँव एक आदर्श गाँव था। हम कभी मारकाट की बात सोचते भी नहीं थे किन्तु इधर कुछ प्रतिक्रियावादी तत्व व्यक्ति-गत स्वार्थ और पद के लोभ में इन्सानी लहू को भी बहाने में नहीं हिचक रहे हैं। आप यह न सोचें कि सरकार इस ओर उदासीन है। या शासन ने इस ओर आँखें मूंद ली हैं? नहीं वह सब देख रही है। यह आग जिसने लगायी है वह दंड पाये बिना नहीं रह सकता। पर मैं इतना चाहता हूँ कि उन झगड़ों को आप ऐसा रंग-रूप न दें जिससे हमारे सारे देश की शांति भंग हो जाय। हमारी फूट का दूसरे दुश्मनों ने सदा लाभ उठाया है। क्या आप चाहते हैं कि फिर हमारी स्वतंत्रता चली जाय। कौन जाट है और कौन राजपूत। कौन ब्राह्मण और कौन हरिजन? हम सभी एक हैं। पंचायत की दृष्टि में और व्यव-हारिक दृष्टि से। फिर यह मनमुटाव क्यों? मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि यह मनमुटाव सिर्फ हमारा भ्रम है। सिर्फ कुछ सत्ता लोलुप व्यक्तियों की साजिशें हैं। आप उनकी बातों में न आयें और देश के निर्माण में लग जायें। आज देश आपसे कुछ और माँग रहा है। वह माँग रहा है—"मुझे सामर्थ्य दो मुझे समृद्ध बना दो। यह तभी सम्भव है जब हम ऊँच नीच और भेद भाव को भूल जायें।"

इसके बैठते ही तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण गूँज उठा। तब रामराम जी उठे। सम्बोधन के पश्चात उन्होंने गाना गाया। गंगाराम ने भी उसकी बीच-बीच में ताल दी।

वह बोले "भाइयो तथा बहिनो! आज आपके सम्मुख मुझे बोलने

उजाड़ करता रहता है। क्यों तुम गिराता माइ"की एक झापड़ कि सारी शैतानी भूल जायेगा।"

माँ का इतना कहना था कि राजा रोने लगा। जब वह रोता था तब उसके चेहरे पर अपार करुणा भाव उठती थी और देखने वाला द्रवित हुए बिना नहीं रहता था। माँ द्रवित हो उठी। उसने लपक कर राजा को अपनी गोद में उठा लिया और उसे चूम कर पुचकारने लगी। आप ही अपनी ओढ़नी से उसके शरीर को पोंछने लगी।

वह कहती जा रही थी "मेरे राजा को किसने डाँटा चुप-चुप-चुप चुप हो जा मेरे साजने।"

सावित्री की आँखों से पावन ममता की रश्मियाँ चमक रही थी।

× × ×

गाँव के स्कूल के पश्चिमी मैदान में आम सभा का आयोजन हुआ इस सभा में दो प्रमुख नेता आये थे। एक राजा श्री प्रतापसिंह और चौधरी राजाराम। दोनों संसद-सदस्य थे। कांग्रेस में थे। राजपूतों और जाटों के बीच बढ़ती हुई वैमनस्य की खाई को पाटने के लिए इन दोनों ने इधर अथक परिश्रम किया था। जिसका परिणाम यह निकला कि आज मंच पर मोतीसिंह का बेटा धर्मसिंह और हरसुख का ममेरा भाई सुखाराम दोनों साथ-साथ बैठे हुए थे। बीता नहीं पाया था। उसने कह दिया कि मेरा कोई बैरी नहीं है। आज पहली बार जाट राजपूत साथ साथ बैठे थे। उस व्यक्तिगत झगड़े पर जो जातीयता का जामा पहनाकर दोनों जाति के साधारण लोगों में यह भ्रम बैठा दिया था कि

अब कभी भी किसी का मौका लगेगा वह एक-दूसरे पर चोट किए बिना नहीं रहेगा। वह काम थोड़ा कम रहा था।]

प्रतापसिंह ने खड़े होकर कहा "यह बहुत दुख की बात है कि हम इन्सानियत को नहीं, इस युग में जातीयता को महत्त्व देते हैं। और जातीयता को महत्त्व देने का नतीजा भी हम देख चुके हैं। उसने हमारी शांति को हर लिया। उसने हमारी मिट्टी को खून से रंगकर कलंकित कर दिया। पहले यह गाँव एक आदर्श गाँव था। हम कभी मार-काट का मसला सोचते भी नहीं थे किन्तु इधर कुछ प्रतिक्रियावादी तत्त्व व्यक्तिगत स्वार्थ और पद के लोभ में इन्सानों के खून को भी बहाने में नहीं हिचक रहे हैं। आप यह न सोचें कि सरकार इस ओर उदासीन है। या पुलिस ने इस ओर आँखें मूँद ली हैं? नहीं, वह सब देख रही है। यह आग जिसने लगाई है वह दंड पाये बिना नहीं रह सकता। पर मैं इतना चाहता हूँ कि उन कमीनों को आप ऐसा दंड न दें जिससे हमारे सारे देश की शांति भंग हो जाय। हमारी फूट का हमारे दुश्मनों ने सदा लाभ उठाया है। क्या आप चाहते हैं कि फिर हमारी स्वतन्त्रता चली जाय। कौन जाट है और कौन राजपूत। कौन ब्राह्मण और कौन हरिजन? हम सभी एक हैं। भगवान की दृष्टि में और कानून की दृष्टि में। फिर यह मनमुटाव क्यों? मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि यह मनमुटाव सिर्फ हमारा भ्रम है। सिर्फ कुछ गलत लोगों की साजिशें हैं। आप उनकी बातों में न आवें और देश के निर्माण में लग जावें। आज देश आपसे कुछ और माँग रहा है। वह बोल रहा है—"मुझे खुशहाल बना दो मुझे सम्पन्न बना दो। यह तभी संभव है जब हम ऊँच-नीच और भेद भाव को भूल जावें।"

उनके बैठते ही तालियों की गड़गड़ाहट से आकाश गूँज उठा। "राजाराम की जै। [illegible] गंगाराम। [illegible] उनकी बीच-बीच में [illegible]।

वह बोले "भाइयो क्या कहूँगा! आज [illegible]

का अवसर मिला है। सबसे पहले मैं राष्ट्रपिता बापू को स्मरण करता हूँ जिन्होंने इन्सानियत के लिए अपने को बलिदान कर दिया।

उन्होंने अपनी तकरीर में इस बात पर जोर डाला कि आपस में प्रेम रखने में ही लाभ है। वैर और झगड़े में सभी तरह का नुकसान है। उन्होंने विस्तृत रूप से बताया कि इस मिलाप को कराने में उन्हें कितना परिश्रम और कितनी दौड़-धूप करनी पड़ी है? उन्होंने और प्रतापसिंह जी ने कई-कई बार खाना भी नहीं खाया था। आज ये दोनों जातियाँ फिर से मिल रही थीं। इस गाँव का सारा जीवन इन्हीं दो जातियों पर निर्भर था। विगत दिनों में आपसी वैमनस्य के कारण कितनी कठिनाइयाँ दोनों को झेलनी पड़ीं, यह किसी से छिपी हुई नहीं थी। फिर भाई चारे व मिलाप के नारे लगाए गए। जोरासिंह का बेटा और हरगुल के मामा के बेटे ने दोनों का आदान प्रदान किया। वैमनस्य सैद्धान्तिक रूप से समाप्त हो गया।

वहाँ से हटते ही चंपली और सावित्री ने सूनी पगडंडी पकड़ ली। शाम के धुंधले साए धीरे धीरे गहरे हो गये थे। पश्चिमी क्षितिज पर अब भी थोड़ा-थोड़ा प्रकाश था।

चंपली ने पूछा, 'बहिन ! यह अच्छा हुआ। रार से प्रीति सदा अच्छी होती है।

प्रेम में ही फायदा है। मैं ईश्वर से विनती करती हूँ कि यह प्रीत की डोर कभी टूटे नहीं।

'मुझे कभी-कभी छप्पर पर पानी भरते डर लगता था कि कहीं राजपूतनियाँ धक्का न दे दें।"

"अब मन को धीरज दे। अब आपस प्रीति हो गयी है। अब हम आपस में कभी नहीं लड़ेंगे।

किन्तु बुद्धिमान ने उसी रात माँ को पकड़कर कहा 'बाहर की गाँठें खुल गयी हैं भीतरी पर मन की नहीं। दोनों दलों के मुखियों पर वह अपनापन नहीं देखा जो दो भाइयों के मिलन पर होता है। क्योंकि !

हम इतना ही याद रखता कि हम आदमी हैं।"

"मुसलमान की मैल साफ होते-होते होगा। आज हाथ मिले हैं तो दिल दोनों भी मिल जायेंगे। अब मुझे भ्रम ही बढ़ता लगता है।"

"जोशी! यह सत्ता का मोह है न यह क्या नहीं करवा सकता। चुनाव आने दो यही अमृत बरसाने वाले जहर उगलेंगे। देखना हमारे भीतर ही भीतर नफरत की एक आग जल रही है। वह हमारे होठों की दीवारों को कई बार तोड़ना चाहती है पर हम उसे हुक्म नहीं देते। किन्तु हम उस नफरत को कब तक दबाये रहेंगे? एक जमाना एक घड़ी ऐसी भी आ सकती है कि वह पूरा बाहर निकल कर खून की नदियाँ बहा दें। जोशी! दरअसल हमारे दिल इतने मैले हो गये हैं कि हम एक-दूसरे पर यकीन नहीं कर सकते। कल ही शहर में शरणार्थी और शहर वालों में झगड़ा हो गया। पुलिस नहीं आती तो जरूर अनर्थ हो जाता। तू सोच न जरा-जरा सी बात को लेकर जातीयता-प्रान्तीयता को उभारा जाता है।"

माँ ने कोई जवाब नहीं दिया। वह चुपचाप खड़ी सोचती रही। उसने जीवन में सामन्ती व्यवस्था देखी थी। उस देश को अनुशासन में रखा जाता था ऐसी स्थिति में उसे यह सब कलियुग के खेल लगते थे। गुनेगार शासक बन गये थे। माँ अब भी विमूढ़ सी खड़ी रही थी।

पुत्र ने उसके ध्यान को भंग किया। उसे गोद में उठाती हुई वह बोली "कलियुग की माया ही बड़ी विचित्र है। यहाँ आदमी अच्छी तरह जी भी नहीं सकता है। पर मेरे राजा बेटा तू "रामा पीर" बनना जिसके मन्दिर में हिन्दु मुसलमान और हरिजन सभी जाते हैं। तब एक बार रुणीचा धाम में रामदेव जी फिर से अवतार लेकर इस जातीयता को रोकने को जोर दे।"

प्याऊ पर भीखा से चेतराम का झगड़ा हो गया। चेतराम च
ा कि भीखा मुझे ठेकने की ओर तब आकर पानी पिलाये। भीर
इन्कार कर दिया। बात बिगड़ पड़ी।

चेता अपनी मूँछ ऐंठता हुआ बोला हमारी बिल्ली हमीं
म्याऊँ?"

भीखा एक आदमी को चुपचाप पानी पिलाता रहा।

चेतराम ने भौंहें सुनवा ली।

"कान से बहरा है क्या?"

भीखा अपने काम में तन्मय था।

"कामासुर (काम) की मस्ती उभरी हुई है? और वह बो
से बोला "सुना नहीं पानी का एक लोटा ला।"

भीखा ने तुरन्त कहा, "भगवान ने तुम्हें भी टाँगें दी हैं। अ
पी ला।"

"वाह! रस्सी जल गयी पर बल नहीं गये। भीखा! तू जानत
है कि तू हमारा चाकर है। चौधरी काका मेरे काका लगते हैं। च
तू चाकरी खाता है चाकरी चाकर हाजिरी न भरना पाप कहलाता है।

"मैं तेरे काका की चाकरी खाता हूँ तेरी नहीं। तेरी खाऊँगा
चाकर तेरे हुक्म को मानूँगा"

"और अभी नहीं मानेगा।"

"नहीं।"

"देख सिर से मत चल।"

"तू क्या टेढ़ी कर लेगा।"

चेता को गुस्सा आ गया। किन्तु उसने हाथ नहीं चलाया। उसने गुस्से में दाँत किटकिटा कर कहा "देख तुझे इस चमत्कार का क्या मजा चखाता हूँ।"

चेता सीधा घर आया।

दोपहर था।

धूप के बादल दूर-दूर तक छाये हुए थे। गाँव में सन्नाटा था। माँ सोई हुई थी। सावित्री के एकादशी का उपवास था। वह भीतर बैठी बैठी भजन गा रही थी।

चेता धूं-धां करता हुआ पहुँचा।

"भौजी भौजी!" वह बड़ा व्यग्र था।

सावित्री बाहर आयी। चेता मुझसे छोटा था। सावित्री उससे घूँघट नहीं निकालती थी। उसने शान्त स्वर में पूछा 'क्या है चेता जी?"

"भौजी आज मैं आपसे एक फैसला कराने आया हूँ।"

"कैसा फैसला?"

"मैं आपसे कहता हूँ कि आप चीप को पहर क्यों रिखाती हैं।"

सावित्री ने उसे धीरे बोलने का आदेश दिया 'आप धीमे बोलिये। माँ जी की आँख अभी लगी है। मैं आपके कहने का मतलब नहीं समझी।"

'मतलब साफ है कि आपने चीता को प्याऊ में क्यों रखा? आप जानती हैं कि आज उसने मेरा कितना अपमान किया है। मैंने धौंस दिखायी तो कहने लगा कि कौन से मियाँ मर गए और रोज़े घट गए। हरएक अपने-अपने भाग्य का खाता है। और उसने मुझे पानी तक नहीं पिलाया।"

"क्यों नहीं पिलाया?"

"मैंने उसे कहा कि जरा गगरे के नीचे पानी लाकर पिलादे। बस इतने में ही बकवास करने लगा और साफ कह दिया कि मैं ऐसा

नहीं कर सकता।"

"उसने ठीक ही किया। आपकी अनुचित बात करनी ही नहीं थी। आखिर वह ब्याह में पानी पिलाने की चाकरी करता है न कि आपकी जी-हुजूरी करने। मनुष्य क्यों झूठे अधिकारों की मांग करता है ?" उसके स्वर में स्वाभिमान था और आंखों में ओज।

नेता अपनी भौजाई का यह उत्तर सुनकर कुछ विस्मित हुआ। स्थिर दृष्टि उस पर जमाता हुआ वह बोला "भौजी आपको क्या हो गया ? आप उस दुश्मन के विरुद्ध मेरी बात की रक्षा नहीं कर रही हैं ? आखिर आप हमारे घर की पगड़ी उछालने पर क्यों उतारू हैं ?

"मैं किसी की पगड़ी नहीं उछालती। मैं किसी को पीड़ा नहीं पहुंचाती। मेरा अपना धर्म है कि आदमी से भला न हो तो बुरा भी किसी का न करे। आप किसी को क्यों सताते हैं। पता नहीं उस गरीब को दुःख देने में आपको क्या मिलता है ?

"उसे आप गरीब कहती हैं। मैं कहता हूं कि वह कायर की बीज है। उसे गरीब समझना आपकी बड़ी भारी भूल है।"

"हो सकती है। पर आप मुझे एक बात बताइए। क्या उसने आपको पानी पिलाने के लिए कोरा उत्तर दिया।"

"नहीं ?"

"पानी पिलाती।"

"नहीं।"

"सिर्फ उसने बेगड़े की छांव में आकर पानी नहीं पिलाया। यह उसने कोई दोष नहीं किया। समझे आप ?"

"भौजी ! आखिर वह अपना नौकर है। हमारे खानदान से वह तनखा लेता है। फिर उसे हमारी आज्ञा मानने से इन्कार क्यों है।"

(सावित्री गम्भीर हो गई। उसके मन में यह विचार बिजली की तरह कौंध गया कि इस बात पर यह खानदान के नाम की दुहाई देता है। जब मैं पकेरी खेत में काम करती हूं तब उस खानदान के गौरव

का ध्यान क्यों नहीं आता ? बेटा के पाठ मार्ग है । इनमें से एक ने भी आकर कभी यह नहीं कहा कि भाभी तेरा क्या हाल है ? बस इतनी शुभकामना प्रकट करते हैं कि 'वह' आये नहीं । कैसे स्वार्थी हैं ये सभी लोग । वह चुपचाप खड़ी रही । नीचे आंगन में एक गिद्ध अनंत दूरी पर अकेला उड़ रहा था । दीवारों को छूकर आने वाली हवा अपनी मोहनी में धाय भर भर ला रही थी । ऐसा महसूस होता था उसकी देह का सुनहरा धुआं हवा की तीव्र लहरों के साथ उड़ा चला जा रहा था ।

"आपने क्या सोचा भाभी ?"

सावित्री चौंक पड़ी । उसके चेहरे पर दुःख की हल्की परत छा गई । एक उदास उदास वातावरण मालूम हो गया । वह दूसरे स्वर में बोली "अब वह निर्दोष है फिर उसे मैं दंड क्यों दूं । निरपराध को सताना अच्छा नहीं है देवरजी ।"

"मैं उपदेश सुनने के लिए नहीं आया हूं । आज आपको मेरे वचनों की रक्षा के लिए थोड़ा-सा अधर्म भी करना पड़ेगा ।"

"वचन-रक्षा की परम्परा समाप्त हो गई है देवर जी ! मैंने यह पहले भी तय कर लिया कि मैं सीमा को बिना दोष आपकी से नहीं निकालूंगी । यह तो नहीं भैया जी बात हुई । मुझे नहीं तो तेरे बाप से बाकी निपटानी मैं तो मुझे पाऊंगा । इसे ध्यान नहीं कहा जा सकता ।"

"फिर मैं क्या समझूं ।"

"आप समझिए कि आपकी भौजाई ने सत्य को नहीं छोड़ा । वह धर्म पर चलने वाली लुगाई है ।

"ठीक है ।" वह जोर से पांव पटक कर चला गया । सावित्री को लगने लगा ही यह क्यों महसूस हुआ कि उसने ऐसा करके उसका ठीक नहीं किया है । वह सीमा को इतना क्यों चाह रही है । आखिर वह दुश्मन ही है ।"

वह विचारों के सागर में डूब लिप्त होती गयी ।

राघुरा मेरे चले जाने के बाद सावित्री ने एक हद की अनुभूति से

नहीं कर सकता ।"

"उसने ठीक ही किया । आपको अनुचित बात करनी ही नहीं थी । आखिर वह प्याऊ में पानी पिलाने की चाकरी करता है न कि आपकी जी-हुजूरी करने । मनुष्य क्यों मुझे अधिकारों की माँग करता है ?" उसके स्वर में स्वामीत्व का धीर आँखों में ओज ।

सेठ अपनी भौजाई का यह उत्तर सुनकर कुछ विस्मित हुआ । स्थिर दृष्टि उस पर जमाता हुआ वह बोला "भौजी आपको क्या हो गया ? आप उस दुश्मन के विरुद्ध मेरी शान की रक्षा नहीं कर रही हैं ? आखिर आप हमारे घर की पगड़ी उछालने पर क्यों उतारू हैं ?"

"मैं किसी की पगड़ी नहीं उछालती । मैं किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाती । मेरा अपना धर्म है कि आदमी से भला न हो तो बुरा भी किसी का न करे । आप किसी को क्यों सताते हैं । पता नहीं उस गरीब को दुःख देने में आपको क्या मिलता है ?"

"उसे आप गरीब कहती हैं । मैं कहता हूँ कि वह साँप की चीज है । उसे तुच्छ समझना आपकी बड़ी भारी भूल है ।"

"हो सकती है । पर आप मुझे एक बात बताइए । क्या उसने आपको पानी पिलाने के लिए कोरा उत्तर दिया ।"

"नहीं ?"

"गाली निकाली ।"

"नहीं ।"

"सिर्फ उसने नेवले की चोंच में डालकर पानी नहीं पिलाया । यह उसने कोई दोष नहीं किया । समझे आप ?"

"भौजी ! आखिर वह अपना नौकर है । हमारे खानदान से वह उसका पेशा है । फिर क्यों हमारी आज्ञा मानने में इन्कार क्यों है ।"

(भाविनी गंभीर हो गई । उसके मन में यह विचार बिजली की तरह कौंध गया कि इस बात पर वह खानदान के नाम की दुहाई देता है । जब मैं अकेली सेठ में काम करती हूँ तब उस खानदान के गौरव

का ख्याल क्यों नहीं आता ? बेटा के आठ भाई हैं । इनमें से एक ने भी आकर कभी यह नहीं कहा कि भौजी तेरा क्या हाल है ? बस इतनी शुभकामना जरूर करते हैं कि 'वह' आयें नहीं । कैसे स्वार्थी हैं ये सभी लोग । वह चुपचाप खड़ी रही । नीचे आंगन में एक गिद्ध अनंत दूरी पर अकेला उड़ रहा था । दीवारों को छूकर आने वाली हवा अपनी झोली में आग भर कर ला रही थी । ऐसा मालूम होता था जलती रेत का गुबार घूमती हवा की तीव्र लहरों के साथ उड़ा चला आ रहा था ।

"आपने क्या सोचा भौजी ?"

सावित्री चौंक पड़ी । उसके चेहरे पर दुख की हल्की परत छा गई । एक उन्माद-उदास आवरण आच्छन्न हो गया । वह दृढ़ स्वर में बोली "जब वह निर्दोष है फिर उसे मैं दंड क्यों दूं । निरपराध को सताना अच्छा नहीं है देवरजी ।"

"मैं उपदेश सुनने के लिए नहीं आया हूं । आज आपको मेरे वचनों की रक्षा के लिए थोड़ा-सा प्रयास भी करना पड़ेगा ।"

"वचन-रक्षा की परम्परा समाप्त हो गई है देवर जी ! मैंने यह पहले ही तय कर लिया कि मैं मीना को बिना दोष बावली से नहीं गिरा-ऊंगी । यह तो वही भेड़िये वाली बात हुई । तूने नहीं तो तेरे बाप ने गाली निकाली, मैं तो तुझे खाऊंगा । इसे न्याय नहीं कहा जा सकता ।"

"फिर मैं क्या समझूं ।"

"आप समझिए कि आपरी भौजाई ने धरम को नहीं छोड़ा । वह धर्म पर चलने वाली लुगाई है ।"

"ठीक है ।" वह जोर से पांव पटक कर चला गया । सावित्री को उसके जाते ही यह कभी महसूस हुआ कि उसने ऐसा करके उसका ठीक नहीं किया है । वह मीना को इतना क्यों चाह देती है । आखिर वह दुश्मन ही है ।"

वह विचारों के सागर में तल्लीन होती रही ।

वस्तुत मेरे चले जाने के बाद सावित्री में एक दृढ़ता की [illegible]

जन्म में लिया था। इसके साथ ही मेरे आस-पास वाले उसके अपनी सहानुभूति भी प्रदर्शित नहीं करते थे। बल्कि सभी की यही मनसा (इच्छा) थी कि मैं न आऊँ और वे इतनी बड़ी जमीन-जायदाद के मालिक बन जाएँ। कभी-कभी वे मेरे लड़का होने के पूर्व इस तरह की चर्चा भी कर बैठे थे कि एक बनी आदमी चौधरी चाचा की नाव जाएगा। इसलिए सावित्री का खानदान वालों के प्रति मोह टूट सा गया। इसके साथ साथ सीता की बहू चंदली सावित्री की खूब सेवा करती थी। जितना कोई मोट्यार (जवान) मजूर काम कर सकता था उसके बराबर। वह भूतनी की तरह मेहनत करती थी। एक बार तो वह सावित्री के हुक्म को अपनी जान देकर भी पूरा करती थी। मां की स्थिति विचित्र थी। अगर वह बहू से आतंकित नहीं होती तो कम से कम घर की शान्ति अवश्य भंग रहती। जब चंदली उसके पाँव दबाती तो माँ उसे मोह वश देखती और जब खानदान वाले आकर उसके रूप-गौरव की प्रशंसा करते तो वह उनकी हाँ में हाँ मिला देती। फलस्वरूप सावित्री ने अधिकतर उनके आने-जाने पर रोक ही लगा दी। वह उनके साथ बिलकुल रूखा व्यवहार करती थी। फिर भी कभी-कभी माँ अपनी प्रशंसा में झूमकर चिचियाती सी कहती "क्या करूँ सुबह शाम बहू के सामने थाली को परोसनी पड़ती है।" सुनकर विद्रोह वह नहीं कर सकती। जैसे इन्सान में एक व्यवस्थित जीवन गुजारने की मूलभूत आकांक्षा हो। जैसे वह थकने पर कुछ समझौते के साथ आराम-विश्राम करना चाहता हो। माँ की ऐसी ही दशा थी। वह बहू के पौरुष के सामने नत थी।

इसी रात भर में एक पंचायत बैठ गई। सारे खानदान वाले इस बात पर अड़ गये कि सीता को प्याऊ की नौकरी से तुरन्त हटाया जाय। यह हमारी शान का प्रश्न है। दूसरी ओर सावित्री अकेली थी और हिमालय की तरह अचल।

लालटेन का धुँधला धुँधला प्रकाश। उसकी भारी तिरछी छायाओं से किसी का भी चेहरा साफ नज़र नहीं आ रहा था। बल्कि जब

लालटेन की बत्ती भक-भक करके जलती तब उपस्थिति के आवेश भरे चेहरे और भी भयानक लगते थे। एक ओर इस पन्द्रह आदमियों का हठ और एक ओर घूंघट में सिमटी सावित्री।

आखिर बेना का बाप राघव उठकर बोला "भौजी! तू अपनी बहू को समझा दे। पर हम चुप नहीं रहेंगे। बीजा के पीछे कहीं तुमसे झगड़ा न हो जाय?" उसने अपनी मूँछों पर ताव दिया।

माँ डर गई। वह घबराकर बोली "मैं क्या कहूँ? यह बहू किसी हठ की साक्षात मूर्ती है।" और वह सावित्री की ओर घूमकर बोली "बहू तू इनका कहा मान जा नहीं तो अनर्थ हो जायेगा। हमारे घर में आज कोई मर्द नहीं है इसलिए हमें कोई धमका सकता है। हमें कोई भी नीचा दिखा सकता है। तू इनकी बात मान जा। आज मेरा बेटा होता तो क्या ये इस तरह नाक ऊँचा करके बोलते?" और माँ फुफक-फुफक कर रो पड़ी।

राघव फिर बोला "अपनी बहू को समझा दे। क्यों घर के पीछे है घर को जला रही है?"

बेना ने कहा "आप अपना सम्बन्ध बीजा से तोड़ लीजिये। पैसा देने पर काम को आदमी मिल जायेंगे। पर एक बीजा इस खानदान का नाम धूल में नहीं डाल। इतना ध्यान रहे।"

घूंघट में सिमटी-सिमटी सावित्री का हृदय विद्रोह कर उठा। तेज स्वर में बोली "आपको जो कहना है वह कह लीजिये। आप यह न समझें कि इस घर में जो हाथ हैं वे माटी उगाने के काबिल नहीं हैं। मुझे कुछ अपमानजनक बोला नहीं लगता। क्या कभी आपने हमारे दुःख दर्द में हिस्सा लिया है? नहीं फिर अपमानजनक कैसा? सम्बन्ध कैसा?

"और आप अपने बेटे बेना का कसूर क्यों नहीं देखते? एक गरीब एक कोने में पड़ा सा रहता है एक शैतान जानबूझ कर उस पर गिरता है और गिरकर उसे कोसता है क्यों? इसलिए वह एक किसान है।"

वह एक दम चुप रही और बोली "मैं बुरी इन्सान नहीं हूँ। मैं भी

जाट की बेटी हूँ। मेरे बाप ने भी मुझे पूत के चाव से और बैसाख की गरमी में दोहरा लगाना सिखाया है। सिंहों की गरजनाओं के बीच खेत में पहरा देने का साहस दिया है। आप भ्रम में न रहें, अच्छा यही है कि आप इस बात को यहीं पर खत्म कर दें।"

बहू सावित्री की ललकार थी।

सारे लोगों में सन्नाटा छा गया। रावत बोला "बहू! मर्यादा को मत त्यागो। तू इस घर की बहू है। तुझे इस तरह बोलते हुए शर्म नहीं आती!" रावत का सारा शरीर इस अनहोनी के आक्रमण से कांपने लगा। उसे सपने में भी ख्याल नहीं था कि चाहरदीवारी में बंधी इस गांव की कोई बहू इस तरह प्रत्यक्ष सवाल-जवाब कर सकती है?

"शर्म आपको आनी चाहिए औरतों को धमकी देते हुए। आपने समझा होगा कि कौन है इनका अपना। पर शायद आपको मालूम नहीं कि जिसका कोई नहीं होता है उसका ईश्वर होता है।

"बहू!"

मां हतप्रभ हो गई।

"मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप अपने इन अपनों को समझाइये। अधिक अनीति अच्छी नहीं होती।"

उपस्थिति में फुसफुसाहट आरम्भ हो गई।

"चलो" मैया ने कहा, 'बहू खूब सर पर चढ़ा रखी है! कोई चिन्ता नहीं। देखना है कि यह मानती है या नहीं? चलो भाई चलो।

सब लोग क्रोध में लाल-पीले होकर चलते बने। सावित्री की आंखों में आंसू आ गये थे उसने उन्हें पोंछा। मां की आंखें सजल थीं। वह दबे स्वर में बोली "बहू यह अच्छा नहीं हुआ। कहीं रात-बिरात इन्होंने इसे सोता हुआ रख दिया तो?"

सावित्री ने लटकती हुई बन्दूक की ओर देखकर गर्व से कहा "मां जी! मैं किसी से नहीं डरती। इन्होंने अभी तक [illegible] से तड़पती हुई

बहुओं को ही देता है उसमें किसी मिट्टी बहुओं से उसका काम नहीं पड़ा है। आप चिन्ता न करें आप सुख की नींद सोइये।

पर माँ उस रात नहीं सो सकी। वह जागती रही। हर खटके के साथ उसका ध्यान भंग हो जाता। उसे लगता था कि उसके स्वजन ही उसका सत्यानाश करने के लिए इस घोर अन्धेरे में मकान में घुसे आ रहे हैं।

किसी तरह सुबह हुई।

सुबह से ही माँ के पास कई औरतें आयीं। उन्होंने भी माँ को समझाया। माँ सावित्री को समझाने लगी। सावित्री ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने दीवार पर लटकती दोनों बन्दूकों को झाड़-पोंछकर गोली भर कर तैयार कर लिया।

उसका दिमाग जोर से काम करने लगा। वह सीधी सुलेमान चाचा के पास गयी। उन्हें सारी स्थिति समझाते हुए वह बोली कहीं वे लोग बीता को न मार दें।"

"इसका कोई भरोसा नहीं है।"

"फिर चाचा ?" आज वह सुलेमान से भी बेदर्द हो गयी।

"मैं पुलिस को कह आता हूँ।"

"हाँ आप इतना अवश्य कह दें कि वे लोग बीता के खून के प्यासे हैं।"

"जरूर कह दूँगा।

सावित्री वहाँ से आकर अपने काम में लग गयी। कुछ स्त्रियों ने उसे समझाना चाहा पर वह नहीं मानी। उसने कह दिया कि वह किसी से डर कर नहीं रह सकती। वह किसी की धमकियों से आने वाली नहीं है। उसके भी दो हाथ हैं।

शाम घिर आ गयी।

शाम ने वातावरण को जहरीला कर दिया। माँ को हर समय यह आशंका रहने लगी कि कोई अनर्थ होने वाला है जिससे घर [illegible] पड़ने लगी। कभी-कभी वह सावित्री पर उग्र नज़रों की ओर घूरे

सराहना देती थी कि वे और संयोमित मुझे क्या निराश कर देंगे ?

सावित्री माँ के समक्ष मौन रहती।

इस तरह दो-तीन दिन बीत गये।

माँ की आँखों की नींद उड़ गयी। सावित्री भी सजग रहने लगी। कीता भी सावधान हो गया। गाँव में भी इस घटना का थोड़ा-बहुत प्रचार हुआ। सभी आश्चर्यचकित रह गये। ऐसा साहस—वह भी सावित्री में ? आश्चर्य आश्चर्य ! सचमुच वह मर्दानी औरत है।

पुलिस थानेदार ने रावत को बुलाकर डाँट दिया "कीता को कुछ भी हो गया उसके जिम्मेदार तुम होओगे। कानून को हाथ में लेने की चेष्टा मत करना।"

जाटों और राजपूतों के झगड़े ने रावत को बता दिया था कि कच-हरी की दीवारों में आना जाना कितना मँहगा पड़ता है। इसलिए वह सहम गया पर सावित्री के प्रति वह और भी कठोर हो गया। उसको विश्वास था कि सावित्री ने भी पुलिस को यह चीज सिखाने के लिए प्रेरित किया होगा।

भीतर ही भीतर आग सुलगने लगी।

× × ×

हम लाख समय-सावधान और सोच-विचार कर कदम उठायें किन्तु कुछ घटनायें अनायास अप्रत्याशित घट जाती हैं। उनका संदर्भ ढूँढे नहीं मिलता। उनका सम्बन्ध लाख प्रयत्न के बावजूद भी हम नहीं पा सकते।

ग्रह-दाह बढ़ गया था। ऐसा लगता था कि चंद ही दिनों में गर्मी सोम माँ से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेंगे। सावित्री भी कभी-कभी उदासी हो उठती थी और अपने दुर्भाग्य को लेकर वह एकान्त में रो लिया करती थी। उसे अपने नीरसमय और कपट जीवन पर झुँझलाहट के साथ-साथ एक ऊब और उदासीनता होती थी और उसे लगता था कि ऐसे जीवन से मौत भली। वह मर जाये तो अच्छा है। ईश्वर उसे अपने दरबार में बुला ले तो उत्तम।

रात अँधियारी थी। काला बैरन गहरा होकर बैठा था। सावित्री को लगता था—यही नीरसता मनुष्य के दिल में सदा बनी रहे तो उसका जीवन कितना सुखी हो जाय। साँझ के समय प्रभु के समक्ष दीपक करते समय अचानक ही उसने अपना मुख दर्पण में देख लिया था। उसने देखा कि वह चंद ही सालों में काफी बदल गयी है। उसके बाल कुछ पक गये हैं और चेहरे की सुर्खी मन की कठोरता में गुम हो रही है। उसका मतवाला यौवन नदी के ज्वार की तरह उतर रहा है। सालों ने उसके शारीरिक बल को जरूर बढ़ाया है पर मानसिक बल को क्षीण ही किया है। उसका रंग भी कुछ काला हो गया है।

आज उसे अपने आप पर गंभीरता से विचारने का समय मिल गया। गहरा अन्धेरा और सन्नाटा। उसने एक बार सोये हुए पति को देखा। सोये हुए नैनों को देखा। सोये हुए बच्चे को देखा और वह भर भर ही आयी।

क्या है इस तरह जीने में ?

प्रश्न गंभीरतम हो गया।

मरने की भावना सहसा तीव्रतम हो उठी। उसकी इच्छा हुई कि वह यहाँ से भाग कर उसी सरवर में डूब मरे जिस सरवर में उसके पैर डूबे थे। और वह मृत्यु की दुखस्मृतियाँ उसकी आत्म-शक्ति में पैदा होने लगीं। वह पानी है। सरवर का पानी होता है। इतना गहरा है। एक-दो बार पानी के ऊपर-नीचे आती है। साँस घुटता है और

थोड़ी देर में वह घूम कर ऊपर तैरने लगती है।

वह कांप उठी। उसने महसूस किया कि उसका शरीर पसीने से तर है और उसके रोम की गति भी तेज हो गयी है। वह उठकर बैठ गयी। पलकों के नीचे दुःख के बादल तैर उठे। वह सिसक पड़ी।

उसका जीवन व्यर्थ है। बिना प्रीतम सुख नहीं। क्या खाना क्या पहनना क्या उठना क्या बैठना। सूनी सेज कांटों (अंगारों) की तरह होती है। कुछ भी करना बिल्कुल बनावटी लगता है। फिर, वह भले ही सती हो भले ही बहादुर हो भले ही योगी हो पर लोग उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। 'और कोई-कोई यह भी कहती है कि क्या पता इसका पति ज़िन्दा है या नहीं? शंका! दुःख! आशंकाएँ। कुछ भी हो वह सदा सुहागिन तो है ही। उसे कोई भी विधवा नहीं कह सकता। किंतु वह दुःख के सागर में गिरी है। उसे क्या सुख है! वह केवल मोह-बन्धनों से बंधी है।

तब?

ठुमुक ठुम ठुमुक

छमक छम छमक'

उसके आंसू बहते रहे।

छत पर निर्जीव सी पड़ी रही। प्रभु से प्रार्थना करने लगी कि या तो उसे अपने पति से मिला दे या उसे ही अपने पास बुला ले।

धड़ाम्!

हल्की-सी कूदने की आवाज आई। वह बिल्कुल सावधान हो गई। उसने लपक कर देखा। दो छायाएँ धीरे-धीरे पास की बड़ी ढेरी की ओर बढ़ रही थीं। उस ढेरी में हजार मन घास थी। दूर से वह ढेरी गोल झोंपड़ी सी लगती थी। एकदम इच्छा हुई कि वह यहीं से ज़ोर से चिल्लाए पर उसने ऐसा नहीं किया। वह निःशब्द पांव उठाती हुई नीचे आई। साड़ी सम्भाली। ईश्वर को याद किया और वह उन छायाओं की ओर बढ़ी।

छायाएँ दोनों पास-पास थीं।

एक ने कहा "देखें फिर चेता की मदद कैसे करती है? हम इसकी झोपड़ी फूँक कर रहेंगे।"

"इस बार घास की होली जलायेंगे और सब की खेत की।"

सावित्री को यह समझते देर नहीं लगी कि मामला क्या और किससे सम्बन्धित है! वह एक को पहचान भी गई कि वह कौन है। उसने गुस्से में दाँत पीसकर मन ही मन कहा चेता! ये हैं मेरे घर वाले? कमीने और नीच।

वह पीछे से धीरे धीरे गई और उसने चेता के सिर पर कस कर लाठी का प्रहार कर दिया। अचानक हमला था। चेता नहीं सम्भल सका। धड़ाम से नीचे गिर गया। दूसरी छाया दौड़ने लगी। सावित्री ने उसकी पिण्डी (पिंडलियों) में वह तेज चोट की कि वह कंटीदार बाड़ में गिर गया। फिर वह जोर से चिल्लाई "चोर चोर-चोर!"

देखते-देखते पड़ोसी लोग इकट्ठे हो गए। चेता और उसका संगी जायसा (मित्र) अपना दोनों पकड़ लिए गए। बड़े-बूढ़ों ने उन्हें धिक्कारा। एक ने कहा "तुम लोगों को शर्म नहीं आती। घर में अकेली लुगाई को देखकर लगा तुम्हें चले आये। छि: छि: छि: शर्म हो तो चुल्लू भर पानी में डूब मरो।"

लोगों ने रावत को भी फटकारा। रावत का सिर शर्म से झुका हुआ था और उसने झुँझलाकर चेता को अपनी सटोकी जूती से पीटना शुरू कर दिया "तुम पापी कुल-कलंक नीच कमीने लाज नहीं आई ऐसी ओछी हरकत करते। तू मेरे घर आया ही क्यों? अरे तुझे काला' क्यों नहीं डस गया।

कुछ भी हो इस घटना से सावित्री के शौर्य और साहस का सिक्का जम गया। लोग उसे रणचंडी समझने लगे। उसका लोहा मानने लगे। उसका सम्मान करने लगे। क्योंकि लोगों का विश्वास था कि यदि इसमें कोई देवी वास नहीं करती है इसमें इतना बल कहाँ से था

थोड़ी देर में वह घूम कर ऊपर तैरने लगती है।

वह चौंक उठी। उसने महसूस किया कि उसका शरीर पसीने से तर है और उसके सांस की गति भी तेज हो गयी है। वह उठकर बैठ गयी। पलकों के नीचे धुएं के बादल तैर उठे। वह सिसक पड़ी।

उसका जीवन व्यर्थ है। बिना प्रीतम सुख नहीं। क्या खाना क्या पहनना क्या सजना क्या बैठना। सूनी सेज कौरों (अंगारों) सी लगती होती है। सुख भी उसका बिलकुल बनावटी लगता है। फिर वह चाहे ही धनी हो चाहे ही बहादुर हो चाहे ही जोगी हो पर लोग उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। और कोई-कोई यह भी देती हैं कि क्या पता इसका पति जिन्दा है या नहीं? शंका! दुख! यातनाएं। कुछ भी हो वह सदा सुहागिन तो है ही। उसे कोई भी विधवा नहीं कह सकता। किंतु वह दुख के सागर में घिरी है। उसे क्या सुख है! वह केवल मोह-बन्धनों से बन्धी है।

हम?

ठुमुक ठुम ठुमुक

छमक छम छमक

उसके आंसू बहते रहे।

छत पर निर्जीव सी लेट रही। प्रभु से प्रार्थना करने लगी कि या तो उसे उसके पति से मिला दे या उसे ही अपने पास बुला ले।

सहसा!

हल्की-सी कूदने की आवाज आई। वह बिलकुल सावधान हो गई। उसने लपक कर देखा। दो छायाएँ धीरे-धीरे पास की बड़ी ढेरी की ओर बढ़ रही थीं। उस ढेरी में हजार मन घास थी। दूर से वह ढेरी गोल झोंपड़ी सी लगती थी। एकदम इच्छा हुई कि वह यहीं से शोर के चिल्लाए पर उसने ऐसा नहीं किया। वह नि शब्द पांव रखती हुई नीचे आई। लाठी सम्भाली। ईश्वर का याद किया और वह उन छायाओं की ओर बढ़ी।

छायाएँ दोनों पास-पास थीं।

एक ने कहा "देखें फिर बीता की मदद कैसे करती है ? हम इसकी खोपड़ी चूर कर देंगे।"

"इस बार मास की होली बनायेंगे और मज की सेज भी।"

सावित्री को यह समझते देर नहीं लगी कि मामला क्या और किससे सम्बन्धित है ! वह एक को पहचान भी गई कि वह कौन है। उसने गुस्से में दाँत पीसकर मन ही मन कहा बेता ! ये हैं मेरे घर वाले ? कमीने और नीच।

वह पीछे से धीरे धीरे गई और उसने बेता के सिर पर तन कर लाठी का प्रहार कर दिया। अचानक हमला था। बेता नहीं सम्भल सका। धड़ाम से नीचे गिर गया। दूसरी छाया दौड़ने लगी। सावित्री ने उसकी टिम्बों (पिंडलियों) में वह ठेस चोट की कि वह कँटीदार बाड़ में गिर गया। फिर वह जोर से चिल्लाई "चोर-चोर-चोर !"

देखते-देखते पड़ोसी लोग इकट्ठे हो गए। बेता और उसका संगी साथी (मित्र) अपना दोनों पकड़ लिए गए। बड़ बूढ़ों ने उन्हें धिक्कारा। एक ने कहा "तुम लोगों को शर्म नहीं आती। पर मैं अकेली लुगाई को देखकर लगा चुम्मे चने चाबे। छि: छि: छि: शर्म हो तो चुल्लू भर पानी में डूब मरो।"

लोगों ने रावत को भी फटकारा। रावत का सिर शर्म से झुका हुआ था और उसने झँझलाकर बेता को अपनी लाठोड़ी जूती से पीटना शुरू कर दिया "तुम पाजर तुम-नजर नीच कमीने शर्म नहीं आई ऐसी ओछी हरकत करते। तू मेरे घर जन्मा ही क्यों ? अरे तुझे काला क्यों नहीं हम गया।"

कुछ भी हो इस घटना से सावित्री के शौर्य और साहस का सिक्का जम गया। लोग उसे रणचंडी समझने लगे। उसका लोहा मानने लगे। उसका सम्मान करने लगे। क्योंकि लोगों का विश्वास था कि यदि इसमें कोई दैवी बात नहीं रहती है इसमें इतना दम कहाँ से आ

जाता है। मगर इसके बदले और मैं किसी बीमारी को घूँट के बाहर भोगते भी नहीं देखा था। और वह किसी को कुछ समझती ही नहीं। कोई भी हो वह अपनी बात पहले कह देती है। कुछ भी हो यह सब बुराइयों को शोभा नहीं देता। लाभ हुआ उनसे बचने को है। पर है—एकदम मर्दानी! इस तरह की अनेक बातें होती रहती थीं। उस बर्ता में एक यह भी बात थी कि साहिबों का तेज मैं नहीं सह सका। वह सिद्दी और मैं उनके सामने भीगड़ा। कहाँ मेल? इसको मन में रखना मेरे बूते के बाहर समझा जाने लगा।

बहुत प्रयत्न के बाद भी वह मुझे ग्रहण नहीं सकी। उसकी हार्दिक इच्छा बन गई थी कि या तो मैं आ जाऊँ या प्रभु उसे उठा ले। जैसे यह कभी-कभी भार एकांत से घबरा जाती थी। घी भर भर वह रोती थी तब।

लेकिन कभी-कभी पीड़ा की चरम सीमा पर उसकी इच्छा काफी हिंसक हो जाती थी। वह सोचती थी कि आखिर यह उसके साथ अन्याय क्यों हुआ? उसका विवाह मेरे साथ क्यों हुआ? उसके बाप ने उसके श्वसुर की कमजोरी का फायदा कमजोरी से क्यों नहीं लिया? ससुर को ने यह अन्याय क्यों किया? उन्हें सोचना चाहिए था कि वह उनके बेटे से चार साल बड़ी है और उसका तन-बदन उससे दुगुना है। उसको उसका बेटा कैसे सम्भाल पायेगा? तब वह क्रोध में आ जाती और उसकी इच्छा होती कि वह सबसे बदला ले। पर ये बातें केवल उसके सोचने तक सीमित रहती थीं। जब उसका आवेश-आक्रोश कम पड़ता था तब वह उसे भाग्य के खेल समझकर शांत हो जाती थी।

× × ×

कलकत्ता के करोड़पति सेठ बंसीधर एक माह के लिए गाँव आये। पूरे पच्चीस साल के बाद। गाँव में उनकी एक पुश्तैनी हवेली थी जो सदा से सूनी पड़ी रहती थी और उसके निचले हिस्सों में उनके ठाकुर जमादार रहते थे। गाँव में उन्होंने बड़ा भोज किया था। गरीबों और ब्राह्मणों को बहुत दान-दिया था। एक बार उनके आगमन से गाँव में चहल-पहल मच गयी।

सावित्री को इस हल चल से जरा भी लगाव नहीं। वह दिन प्रतिदिन अपने में तन्मय होने लगी। धीरे-धीरे सेठ के आने की उसकी आशा भी टूट गयी। राजा आजकल अपनी दादी के साथ ही सोता था। चाहे दिन हो या रात राजा दादी के बिना एक पल भी नहीं रहता था। वह सावित्री को बहू और माँ को 'माँ' कहता था।

ठंड का मौसम था।

दोपहर को वह मकान के आगे खाट पर बैठी हुई बटनों के टाँके लगा रही थी। एकाएक चंदनी आ गयी थी। दोनों जनियाँ बातचीत करने लगीं। चंदनी के जीवन में इधर काफी व्यवस्था आ गयी थी। गीता की नौकरी चालू थी और चंदनी भी उसके यहाँ काम-काज किया ही करती थी।

उसने पास ही राजा को गोद में लिया और उसका चुम्बन लेती हुई बोली "यही कि कितने नटखट हो दिन भर खेल में भागते रहते हो।"

राजा उसकी गोदी से नीचे उतर कर दादी के पास भीतर भाग गया। उसे जाते देखकर सावित्री बोली "जब देखो अपनी दादी के पास भागता रहता है।"

"बच्चा है न। जहाँ अधिक लाड़-प्यार पायेगा वहीं ही जायेगा।"

"लाड़ तो मैं भी करती हूँ पर इसका मुझसे जरा भी मोह नहीं है। यह भी अच्छा ही हुआ कि जब मरूँगी तो यह बड़े सुख से रहेगा। बिना फिक्र नहीं रहेगी।"

"अरे तेरे दुश्मन। तेरा बहन ऐसे अशुभ अशुभ बोल मत निकाला कर। हमें बीच मंझधार में ही छोड़ कर जायेगी क्या? तेरे बिना हमें कौन सम्भालेगा।"

सावित्री ने सोचा कि उसकी जरूरत इसीलिए समझते हैं कि वह उनके काम आयेगी। सभी जगह स्वार्थ का रोना है। आज उसका पति होता तो ऐसा नहीं कहता। उसके स्वार्थ में भी सुख लगता।

"क्या सोचने लगी?"

कुछ नहीं।

"कुछ तो जरूर सोच रही थी।

"सोच रही थी इस तरह के जीने से क्या लाभ? बिन पति के बिना कोई जीवन नहीं।

तू ठीक कहती है। चाहे चोखा हो चाहे खोटा (पुरुष) कैसा भी पति हो पर पति होता है। मेरे तो फिर सीसा लग गया।" उसने इतना कह कर अपनी नजर घुमा ली।

"क्या कहा? तेरे पाँव भारी है।"

वह कुछ नहीं बोली।

"अब इस तरह सोचा लगायेगी तो दुख पायेगी।"

उसकी इच्छा के सामने मैं लाचार हो जाती हूँ। कैसे उन्हें 'न' कहूँ न के साथ वे दुखी हो जाते हैं। मुझ से उनका दुख नहीं देखा जाता।"

इस तरह बातें चलती रहीं।

और उसी रात वह खाट में सोयी थी। अन्धेरा था। ठंड भी तेज थी। वह कम्बल में सिमटी थी। बहुत ओढ़ने के बाद भी सर्दी हड्डियों से दूर नहीं हो रही थी। बार-बार उसके स्मृति-लोक में पवित्र प्रकाश पुंज की

तरह प्रत्याभासित हो रहा था। उसे लग रहा था कि मैं उसके पास ही हूँ और उस के बालों को धीरे धीरे सहला रहा हूँ। वह पति प्रेम में डूब सी गयी। उन दुनियादार प्राणियों की तरह उसकी स्थिति थी जो सुख को केवल अपने कल्पना लोक में ही देख सकते हैं। और पति-सुख सब उसकी कल्पना तक ही सीमित था। उस सुख को वह न जाने कितनी बार सोचती थी वह नहीं जानती। वह केवल इतना जानती कि उस कल्पना में उसे एक ऐसी सुखानुभूति होती है जिस में सन्तोष का सागर लहराया करता है।

× × ×

दोपहर

बेचारा मास्टर फुदक कर नीचे पड़ गया। कल्पना की बातें गाँव पर छा गयी थी। कोई खबर नहीं था पर आकाश में धूल के बादल बड़ी तेजी से मंडराये। सावित्री विस्मित सी धूल के बादलों देखने लगी। तभी कोलाहल उभरा। एक व्यक्ति दौड़ा-दौड़ा आया कि डाकू-डाकू-डाकू!

एक—

दो—

तीन—

फायर पर फायर!

गाँव में डाकू आ गये थे। लोग भय से चिल्ला रहे थे। "डाकू-डाकू डाकू!"

सावधान हो गयी।

एकाएक उसने देखा कि तीन डाकू मंदीपर में मासूम बच्चे को लेकर भाग रहे हैं।

जीप की आवाज और नजदीक आ गयी।

उसने निशाना साधा। उसने इष्ट देवता को याद किया और पांच गोली दाग दी। गोली सीधी निकले डाकू की पीठ पर लगी। वह वहीं पर ढेर हो गया। डाकू दल ने भी मोर्चा बांधा।

दोनों ओर से गोलियां छूटने लगीं। सावित्री ने कमाल किया। वह आज दुर्गा काली और लक्ष्मीबाई बन गयी थी। उसने एक निशाना और साधा। दूसरा डाकू भी गिर गया।

और वह भी चीख पड़ी। उसने देखा कि बायें हाथ में गोली आ लगी है। उसने कोई परवाह नहीं की। एक डाकू बच्चे को लेकर भागा जा रहा था। वह उठी। एक गोली उसकी जांघ पर फिर लगी। उसने साहस नहीं छोड़ा। उसने जैसे-तैसे उस पर एक निशाना साधा। निशाना डाकू की टांग पर लगा। वह बच्चे सहित गिर गया। तभी सामने पुलिस की जीप आ गयी।

देखते देखते डाकू दल के कुछ आदमी भाग गये, दो मर गये और तीन घायल हो गये।

× × ×

शेरसिंह को मारा है। यह शेरसिंह जिसने न जाने कितनों को दीन-हीन और बेघर-बार किया है। कितनों की कोख उजाड़ी है और कितनों के सिन्दूर भरी मांगों को सूना किया है। तेरी बहू को दस हजार रुपए का इनाम भी मिलेगा।"

माँ दुख में डूबती हुई बोली "मुझे धन और मान कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे चाहिए मेरी बहू मेरे राजा की माँ। देखो न किस तरह बिलबिला रहा है? मैं नन्ही जान को तड़पता नहीं देख सकती।"

सेठ बंसीधर ने माँ के पास आकर कहा "घबराओ नहीं माँ। खून की भी व्यवस्था हो गयी है। तुम्हारी बहू ठीक हो जायगी। मैं पैसों को पानी की तरह बहा दूँगा। कोई कमी नहीं रहने दूँगा उपचार में।"

पर माँ का मन आकुल-व्याकुल हो रहा था। राजा पूछ रहा था 'माँ बहू कहाँ है। माँ बहू को क्या हो गया?"

माँ रो पड़ी।

(* आज तक स्थानीय दो दैनिकों ने और एक साप्ताहिक ने डाकू शेरसिंह मृत्यु परिशिष्टांक ही निकाल दिया। उसमें कुछ चित्रों के साथ सावित्री की वीरता की कहानी भी छापी गयी। चूंकि पत्र-कांग्रेस समर्थक थे इसलिए उन्होंने यह भी प्रचारित करने की चेष्टा की कि वह कांग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता चौधरी शिवराम की बहू है। लोगों ने उसे एक वीरांगना के रूप में प्रतिष्ठापित कर दिया। दूसरे दिन हर दैनिक पत्र में सावित्री का चित्र और उसकी वीरता की कहानी के साथ यह भी लिखा था कि सुबह से वीरांगना सावित्री को होश है। डाक्टर उसका एक आपरेशन और करेंगे क्योंकि कोख में घुसी गोली अपना निश्चित स्थान छोड़ चुकी है।

मैं चुप हो गया। मेरे हाथ से अखबार छूट गया। क्या करूँ मैं? उन दिनों मैं एक कालेज में सहायक पुस्तकाध्यक्ष था। उन आठ वर्षों में मैंने एक साधारण और अभावग्रस्त जीवन व्यतीत किया। न कोई चक्कर और न कोई झमेला। न कोई भयंकर पश्चात्ताप और न कोई

छटपटाना। केवल भटकना और अभावों-असन्तुष्टियों से जूझना। मुझे क्षण भर के लिए भी परम आनन्द प्राप्त नहीं हुआ। मुझे ऐसा लग रहा था कि मैंने व्यर्थ ही मोह छोड़ा है। था भी मुझसे दोष हुआ जिसे मुझे सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए था। किन्तु परिस्थिति सबसे बड़ी शक्ति है। वह जीवन-नियन्ता है। वह इन्सान को जैसा चाहती है वैसा ही नचाती है। हम सब उसकी कठपुतली मात्र हैं। उसके संकेत पर नाचते हैं गाते हैं हँसते हैं और रोते हैं।

मुझे ईश्वर से चिढ़ थी। क्योंकि उस आवारा ज़िन्दगी में मैंने ईश्वर के लोक में उसी की छत्रछाया में जीवन के इतने घिनौने और भयानक चित्र होते देखे कि उसके प्रति मेरी आस्था ही मर गयी। सोचने लगा—ईश्वर कुछ नहीं है।

किन्तु जैसे ही मैंने गायत्री की दुर्घटना का यह समाचार पढ़ा वैसे ही मन असीम अवसाद से भर आया। किसके सामने अपनी अपार वेदना को प्रकट करूँ। तब जैसे कोई आत्मा की गहराइयों में बोल पड़ा 'प्रभु! प्रभु ही हमारे परम सुख और चरमदुख की परिसीमा का अन्तिम बिन्दु है। मेरी आत्मा उससे याचना करने लगी। अस्पष्ट स्वर में कोई भीतर से कह उठा 'प्रभु मेरी गायत्री को कुछ न हो। उसे तू बचा ले। बचा ले।"

मैं जल्दी से पण्डित मानिक के पास गया और उससे छुट्टी माँग ली। मैंने उसे इस सत्य से परिचित नहीं कराया। मैं घर से चल पड़ा।

इलाहाबाद के मार्ग बड़ी चहल-पहल थी।

मैंने जाकर देखा—शीला खड़ा था। मैंने उसे नहीं पहचाना। उसने मुझे देखते ही कहा 'नारायण भइया'! और तूफान की गति से भागा। थोड़ी ही देर में माँ आ गयी। मुझे देखकर वह रो पड़ी। मैं भी अपने आँसुओं को नहीं रोक पाया। दोनों काफी देर तक लिपटे रोते रहे। लोगों में खुशी की लहर दौड़ गयी। गायत्री की मौत को सुनकर मैं फूट पड़ा। बड़ी देर तक रोता रहा।

माँ राजा को ले आयी। उसे चूमती हुई वह बोली : "राजा, यह है तेरा बापू !"

मेरा मन ममता से भर आया। मैं अपने बेटे को देखता रहा। उसे गोद में लेकर मैंने छाती से चिपका लिया।

फिर मैं सावित्री की ओर चला। मन में विचित्र संघर्ष था और सिर अपराधी की तरह झुका हुआ था। मैं एक-एक सीढ़ी गिन गिनकर चढ़ रहा था। हृदय की धड़कन तेज हो गयी थी। मेरे पीछे मेरी माँ थी गोद में राजा को लिए हुए। अब मुझे बड़ा संकोच हो रहा था। सोच रहा था कि कौन-सा मुँह लेकर उसके सामने जा रहा हूँ। वह मुझे कैसे सब समझेगी ? मेरा मन भारी हो गया। गति धीमी पड़ गयी। कितना समय गुजर गया। पता ही नहीं लगा।

कमरा आ गया था।

मेरे पाँव एक बार ठिठक गये। माँ पहले कमरे में घुसी। उसने घुसते ही कहा : "बहू, देख मैं तेरे लिए क्या लायी हूँ।

सावित्री शान्त निश्चल पड़ी थी। उसने केवल दृष्टि घुमायी। उसके पास में एक नर्स बैठी थी।

माँ ने उत्तेजित स्वर में कहा : "अरे जा न, जा बीबी को बिमार है। बहू ! मदनलाल... !

सावित्री के हृदय में संगीत गूँज उठा। माँ बाहर हो गयी। मैं भीतर घुसा। पलंग की पीठ लिए खड़ा रहा। मुझमें उसे देखने का साहस नहीं था। शर्म भी लगी थी। शायद वह भी समझ गयी थी कि मैं भटका भागा हुआ पति हूँ।

मैंने उसकी ओर देखा। वह फूट फूट रो रही थी। मैं उसके पास बैठ गया। अपने हाथ से उसके आँसू पोंछे। मेरी आँखें भी भर आयीं।

मैंने उसे प्यार से कहा : "मुझे क्षमा कर दे। अब मैं तुझे छोड़कर कभी नहीं जाऊँगा।"

उसने मेरी ओर आँखें भरकर देखा।

मैंने उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा "मुझे क्षमा नहीं करोगी? तब मैं भटक गया था। राजा की माँ तेरी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तुमसे बिछड़ जाने के बाद मैंने जरा भी सुख नहीं पाया। मैंने बहुत कष्ट और कोप सहे।

सावित्री ने धीमे स्वर से कहा "आप आ गये अब मैं नहीं मरूँगी। इधर मुझे आपके बिना जीना अच्छा नहीं लगता था। पर अब जीऊँगी। मैं अब मरना नहीं चाहूँगी।

मैं उसकी सेवा में जुट गया।

उसने डाक्टर को विनती भरे स्वर में कहा "डाक्टर साहब मरूँगी तो नहीं?"

डाक्टर ने मुस्कराकर कहा "आपको कोई खतरा नहीं है। फिक्र न करें" मैंने भी डाक्टर को हाथ जोड़कर प्रार्थना की। मैं दिन उसकी सेवा में जुटा रहा। चौथे दिन सावित्री का एक और टेस्ट होने वाला था। क्योंकि टी॰बी॰ की खाँसी अभी तक खून की वजह से नहीं निराशी गई थी। उसके जीने की इच्छा और तीव्र हो उठी। जो उसका मन इधर मृत्यु के लिए रात दिन तरसता था वह अब मुझे देखकर जिन्दगी में वापस सिमटने लगा। उसकी गहरी आँखों में मृत्यु की मनोकामना मात्र से चांदनी की उदासी छा जाती थी और आँसू टपकने लगते थे।

मैं उसे ढाढ़स बँधाता "घबराओ मत राजा की माँ! तुम्हें कुछ नहीं होगा। तू बिल्कुल चंगी हो जायेगी। तेरा बाप भी ठीक रहेगा। तू न जिसकी पोती है उस खानदान का नाम रौशन कर दिया। सूरज का प्रकाश और हवा का नासिका। अभी मेरा दुश्मन ना रहे। बड़े-बड़े डाक्टर तेरा इलाज कर रहे हैं। अखबारों में मेरा फोटो छपा है।" मैं गिड़गिड़ाते स्वर में बोला "और तू जानती है तू जैसे ही ठीक होगी वैसे ही तेरा सम्मान किया जायेगा। ढेर सारे लोग तेरी बहादुरी की चर्चा करेंगे और मुझे दस हजार रुपए इनाम के लिए

माँ राजा को ले आयी। उस भूमती हुई वह बोली "राजा बेटा यह है तेरा बापू !"

मेरा मन ममता से भर आया। मैं अपने बेटे को देखता रहा। उसे गोद में लेकर मैंने छाती से चिपका लिया।

फिर मैं सावित्री की ओर चला। मन में विचित्र लगाव था और सिर अपराधी की तरह झुका हुआ था। मैं एक-एक सीढ़ी गिन गिनकर चढ़ रहा था। हृदय की धड़कन तेज हो गयी थी। मेरे पीछे मेरी माँ थी गोद में राजा को लिए हुए। अब मुझे बड़ा संकोच हो रहा था। सोच रहा था कि कौन-सा मुँह लेकर उसके सामने जा रहा हूँ। वह मुझे कैसे मर्द समझेगी? मेरा मन भारी हो गया। गति धीमी पड़ गयी। कितना समय गुजर गया। पता ही नहीं लगा।

कमरा आ गया था।

मेरे पाँव एक बार ठिठक गये। माँ पहले कमरे में घुसी। उसने मुझसे ही कहा "बहू देख मैं तेरे लिए क्या लायी हूँ।"

सावित्री शान्त निश्चल पड़ी थी। उसने केवल दृष्टि दौड़ायी। उसके पास में एक नर्स बैठी थी।

माँ ने उल्लसित स्वर में कहा "अरे पास न आ बीबी को बिगाड़ दे। बहू! सरपरा !"

सावित्री के हृदय में संगीत गूँज उठा। माँ बाहर हो गयी। मैं भीतर घुसा। गर्दन नीची किए खड़ा रहा। मुझमें उसे देखने का साहस नहीं था। मन भी भरी गयी। शायद वह भी समझ गयी थी कि मैं उसका भागा हुआ पति हूँ।

मैंने उसकी ओर देखा। वह फूट फूट रो रही थी। मैं उसके पास बैठ गया। अपने हाथ से उसके आँसू पोंछे। मेरी आँखें भी भर आयीं।

मैंने उसे प्यार से कहा "मुझे क्षमा कर दे। अब मैं तुझे छोड़कर कभी नहीं जाऊँगा।"

उसने मेरी ओर आँखें भरकर देखा।

मैंने उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा "मुझे क्षमा नहीं करोगी। तब मैं भटक गया था। राजा की माँ तेरी सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि तुमसे बिछुड़ जाने के बाद मैंने ज़रा भी सुख नहीं पाया। मैंने अनेक कष्ट और कोप सहे।"

मालिनी ने दबे कण्ठ से कहा "आप आ गये अब मैं नहीं मरूँगी। इधर मुझे आपके बिना जीना अच्छा नहीं लगता था। पर अब मैं जीऊँगी। मैं अब मरना नहीं चाहूँगी।"

मैं उसकी सेवा में जुट गया।

उसने डाक्टर को विनती भरे स्वर में कहा "डाक्टर साहब मैं मरूँगी तो नहीं ?"

डाक्टर ने मुस्कराकर कहा, "आपको कोई खतरा नहीं है। आप चिन्ता न करें।" मैंने भी डाक्टर को हाथ जोड़कर प्रार्थना की। मैं रात दिन उसकी सेवा में जुटा रहा। चौथे दिन मालिनी का एक और ऑप्रेशन होने वाला था। क्योंकि पाँव की गोली अभी तक खून की कमी की वजह से नहीं निकाली गई थी। उसके जीने की इच्छा और सौगन्ध हो उठी। जो उसका मन इधर मृत्यु के लिए शान्ति मनाते रहता था वह अब मुझे देखकर जिन्दगी से कसकर लिपटने लगा। उसकी गहरी धँसी आँखों में मृत्यु की भयानक भाग से ज़िन्दगी की उत्कट लालसा बन जाती थी और आँसू छलछला आते थे।

मैं उसे ढाँढ़स बँधाता "घबराओ नहीं राजा की माँ! तुझे कुछ नहीं होगा। तू बिल्कुल अच्छी हो जायगी। ज़रा बाल भी बाँका नहीं होगा। तू ने हिन्दुस्तान कौरवों के कुटुम्ब का नाम रोशन कर दिया है। गुरख का प्यार और इज्जत का सौभाग्य। सभी तेरा गुणगान गा रहे हैं। बड़े-बड़े डाक्टर तेरा इलाज कर रहे हैं। अखबारों में तेरे फोटो छप रहे हैं।" मैं विह्वल स्वर में बोला "और तू जानती है तू जैसे ही ठीक होगी वैसे ही तेरा नागरी-सम्मान किया जायेगा। बड़े बड़े जोर-शोर से तेरी बहादुरी की चर्चा करेंगे और तुझे दस हजार रुपए इनाम के मिलेंगे।"

यामिनी की आँखें फिर भर आयीं। वह दबे स्वर में धीरे धीरे बोली "ईश्वर भी कितने विचित्र खेल खेलता है। कभी-कभी मनुष्य को इच्छाओं के बिलकुल प्रतिकूल फल मिलता है। हमें इतने रुपए मिलेंगे?"

"तुम्हें नहीं मुझे। तू ही इन रुपयों की मालकिन है। तूने प्राण हथेली पर रखकर उन खूंखार भेड़ियों को मारा है। इन रुपयों पर केवल तेरा ही अधिकार है।

"नहीं। उन पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैं जब आपकी हूँ तब मेरी चीज फिर मेरी अपनी कैसे हुई?

वह इसी तरह बातें करती रही। उसकी स्थिति और सुधर गई। उसे रात को नींद भी अच्छी आ गई। मैं सुबह से शाम तक उसके पास बैठा रहता था। वह मुझे आप बीती सुनाती रहती थी। वह कहती रहती कि आपके जाने के बाद उसने कितने कष्ट सहे? साथ ही वह इस बात का वायदा कराती थी कि यह पोता के रहस्य को रहस्य ही रखे। उसे हमें सदा सहानुभूति देनी है।

ऑपरेशन होने की पहली रात।

मैं उसका सिर दबा रहा था। वह निमुग्ध-सी तन्द्रावस्था में सोई हुई थी। उसने मधुर प्यार से कहा। वह कह रही थी "मैं जैसे ही ठीक होऊँगी वैसे ही हम अपनी मंडी को सजायेंगे। उसमें अच्छी अच्छी चीजें लाकर रखेंगे। अपने राजा के लिए घड़ी-चिड़ी बहू लायेंगे। घर की छोटी मायेंगे। अपने पूर्वज को मूर्तिमान करते जा रहे हैं उन्हें नई दोहरायेंगे। अब हम एक ऐसा प्यारा और मधुर जीवन गुजारेंगे जिसका मैं वर्षों से सपना देख रही हूँ।

"अब मैं तू जैसा कहेगी वैसा ही करूँगा।"

"आप से झूठ नहीं बोलूँ जी—आपके आने के पहले मैं हर क्षण मरने की कामना करती थी। मुझे जीवन व्यर्थ लगता था। मुझे मांस सा भी नहीं सुहाता था। मगर यह बच्चा और प्यारी बुढ़ी माँ का म

न होता तो मैं कब की सरवर में डूब मरती। और उसकी आँखें फिर भर आयीं। उसके रोने से लगता था कि अंसुवन की गंगा-जमना सिकुड़-सिमट कर उसकी पलकों में बन्द हो गई हैं। मैं उसे साहस बँधाता रहा। साथ देता रहा कि तेरी उम्र चन्दा सूरज जैसी है। हाथ की जीवन रेखा चारों उँगलियों को पार कर गई है। तू कभी नहीं मर सकती।

आखिर आपरेशन हो गया। इस बार मैंने खुद ने उसे खून दिया गोली भी निकल गई। किन्तु दूसरे दिन दोपहर को अचानक उसके दिल में दर्द उठा। मैं उसके पास बैठा था। वह एकाएक विकल मन प्राण से चिल्लाई, "मेरे सीने में दर्द हो रहा है। राजा के बापू मुझे बचाओ।"

मैंने नर्स को सूचना दी। वह आई और साथ डाक्टर के पास भागी। मालिनी ने मुझे मजबूती से पकड़ लिया मेरा जी घबरा रहा है।"

"हिम्मत न हार।

'राजा के बापू मैं मरना नहीं चाहती। मुझे अब मरने से डर लगता है। मुझे बचा लीजिए।

डाक्टर लोग आ गये। उन्होंने उसे इंजेक्शन दिए। उसका दर्द कुछ कम हो गया। डाक्टरों ने बताया था कि उसे पूरा विश्राम चाहिए। उसके पास कोई न जाय।

मैं माँ से माँ और राजा के पास आ गया। हम इधर ही रहते थे। इसलिए यह ही क्वार्टर था। हम बीच [illegible] के [illegible] एवं शुभेच्छाओं के आये थे। ऑपरेशन सफलता ने [illegible] सभी को प्रसन्नता दी।

माँ हाथ जोड़कर कह रही थी "मेरी बहू ठीक [illegible] [illegible] उस दिन 'माता का पीर बाबा" को लोने का दान [illegible]।"

थोड़ी देर बाद मालिनी ने मुझे बुलाया। [illegible] [illegible] रही थी। अपार अथाह [illegible] [illegible] था

मैंने पूछा "क्या है ?"

वह बोली नहीं । केवल रोती रही । फिर उसने कठिनता से कहा "राजा और माँ को बुलाओ ।" मैं उन्हें बुला लाया । वह उन्हें देखती रही । उसने राजा को अपने पास पास का संकेत किया । मैं उस से गया । उसने उसे चूमा । माँ रो पड़ी । मेरा मन भी भर आया ।

उसने टूटे दबे स्वर में कहा "ईश्वर बड़ा निर्दयी है । बड़ा कठोर है ।" यह ऐसा रहा जैसे उसकी आँखों में कोप की धधक दहकती तृष्णाएँ तैर उठी हों ।

उसने हमें जाने का संकेत किया । हम दूसरे कमरे में आ गए ।

आधी रात को वह चीख पड़ी । हम भाग आये गए । देखा—सावित्री के प्राण पखेरू उड़ गए । उसकी आँखें खुली थीं और उसके चेहरे पर असीम शान्ति विराज रही थी वैसी पौराणिक ऐतिहासिक वीरांगनाओं की मृत्यु पर उनके चेहरों पर विराजती थी ।

मैं उससे लिपट कर रोने लगा । माँ सिर फोड़ने लगी । राजा एक अबोध जिज्ञासा लिए रो रहा था ।

सावित्री मर गई ।

मैंने देखा—सारा सन्नाटा उसकी मौत पर चीख पड़ा है । धीरे धीरे सन्नाटे की जगह चारों पुकारों ने ले लिया । मुझे बार-बार सुना पड़ता था "मैं मरना नहीं चाहती । ओह ! प्रभु तू कितना कठोर और निर्दयी है ।

× × ×

मृत्यु का नीरव संगीत खुद प्रकृति गा रही थी—उस दिन। लगता था—प्रकृति पवन और उसकी सभी क्रियाओं पर मृत्यु की गहरी उदासी छा गई है।

अर्थी का जुलूस धीरे-धीरे श्मशान घाट की ओर बढ़ रहा था। उसमें कई प्रतिष्ठित नेता सज्जन दो मंत्री तथा सेठ बंशीधर थे। सेठ की आंखों में आंसू थे। कुछ भी हो सावित्री को कोई नहीं बचा सका। वह जिस मिट्टी से पैदा हुई थी उसी मिट्टी में सो गयी।

कहानी ख़त्म हो गयी।

× × ×

यह गांव है मेरा।

मैं अभी उसकी स्मृति में बने स्मारक की पूजा करके लौट रहा हूँ। स्मारक-स्तंभ पर लिखा है—वीरांगना सावित्री देवी जिसने दुर्दांत डाकुओं को अपनी गोली का शिकार बनाया। उनकी पुण्य-स्मृति में इस स्मारक की नींव प्रांत के मुख्य मंत्री जी ने रखी।

रास्ता सूना है। वह सन्नाटे की गोद में सोया हुआ है। कभी

मैंने पूछा "क्या है!"

वह बोली नहीं। केवल रोती रही। फिर उसने कठिनता से कहा "राजा और माँ को बुलाइए।" मैं उन्हें बुला लाया। वह उन्हें देखती रही। उसने राजा को अपने पास आने का संकेत किया। मैं उसे ले गया। उसने उसे चूमा। माँ रो पड़ी। मेरा मन भी भर आया।

उसने टूटते हुए स्वर में कहा "ईश्वर बड़ा निर्दयी है। बड़ा कठोर है।" वह रोती रही जैसे उसकी आँखों में जीवन की अनेक अधूरी तृष्णाएँ तैर रही हों।

उसने हमें जाने का संकेत किया। हम दूसरे कमरे में आ गए।

आधी रात को वह चीख पड़ी। हम भागे भागे गए। देखा—सावित्री के प्राण पखेरू उड़ गए। उसकी आँखें खुली थीं और उसके चेहरे पर असीम शान्ति विराज रही थी जैसी पौराणिक ऐतिहासिक वीरांगनाओं की मृत्यु पर उनके चेहरों पर विराजती थी।

मैं उससे लिपट कर रो पड़ा। माँ सिर फोड़ने लगी। राजा एक अबोध जिज्ञासा लिए रो रहा था।

सावित्री मर गई।

मैंने देखा—सारा सन्नाटा उसकी मौत पर चीख पड़ा है। धीरे धीरे सन्नाटे की जगह चीखों पुकारों ने ले लिया। मुझे बार-बार सुनाई पड़ता था 'मैं मरना नहीं चाहती। ओह! प्रभु तू कितना कठोर और निर्दयी है।

× × ×

मृत्यु का रौरव संगीत स्वयं प्रकृति गुंजा रही थी—उस दिन। लगता था—प्रकृति जगत और उसकी सभी क्रियाओं पर मृत्यु की गहरी उदासी छा गई है।

अर्थी का जुलूस धीरे-धीरे श्मशान घाट की ओर बढ़ रहा था। उसमें कई प्रतिष्ठित नेता, सज्जन तो मंत्री तथा सेठ करोड़पति थे। सेठ की आँखों में आँसू थे। कुछ भी हो सावित्री को कोई नहीं बचा सका। वह जिस मिट्टी से पैदा हुई थी उसी मिट्टी में खो गयी।

कहानी खत्म हो गयी।

× × ×

यह कौन है मेरा।

मैं अभी उसकी स्मृति में बने स्मारक की पूजा करके लौट रहा हूँ। स्मारक-स्तंभ पर लिखा है—वीरांगना सावित्री देवी जिसने कुख्यात डाकुओं को अपनी गोली का शिकार बनाया। उसकी पुण्य-स्मृति में इस स्मारक की नींव प्रांत के मुख्य मंत्री जी ने रखी।

सन्नाटा छाया है। वह समाधि की गोद में सोया हुआ है। कभी-कभी

झाड़-झंखाड़ में पवन टकरा कर जब स्पर्श करता है तब मर-मर और खड़-खड़ की हल्की ध्वनि होती है।

दूसरी पगडंडी को पहर की ओर जा रही है। जग पर बैठा कोई किसान बैलों को हेरता हुआ गा रहा है—बापो गोरा हट गा राम बरन पुर कोरे बांधी रे।

गोरा हट गा।

उसका स्वर तेज हो रहा है। धीरे धीरे बैल गाड़ी धूल के बादल में खो जाती है। मैं उसे मंत्रमुग्ध सा देख रहा हूँ—यह गाँव है मेरा इस गाँव की मिट्टी-मिट्टी में उसके कण-कण में गायत्री की कोई स्मृति बसी रही है और मैं उदास हो जाता हूँ रो देता हूँ—काश! उसे छोड़कर नहीं जाता तो ये परिस्थितियाँ उत्पन्न ही नहीं होतीं।

मोड़ पर प्याऊ है। उसके आगे भोला बैठा है। मुझे देखते ही व दौड़ा-दौड़ा आया और बोला "श्मशान भूमि से आ रहे हो भैया? उसकी आँखों में अथाह वेदना है।

मैं सिर्फ रो देता हूँ।

आगे बढ़ता हूँ—गाँव में नया स्कूल बन रहा है। नया भ भवन बन रहा है। तेजी से परिवर्तन आ रहे हैं। सामने आकर गाँव पर मैं पीछे की निर्जीव हो गया हूँ। वही पीड़ाएँ मुझे मिल रही हैं जिन्हें मैंने गायत्री को दी थी। नीरवता सुनसान और एकांत।

आपके घर है भैया।

सोना राजा का हाथ पकड़े खड़ी है। राजा के दूसरे हाथ में बाजरी की रोटी है। मैं समझ गया हूँ कि अभी वह पोपल मास्टर की सोना को भीख मंगायेगी और सोना उसे यह रोटी दे देगी।

सोना अब मेरी भाभी है। मैं उसे अपने घर ले आया हूँ। स की परवाह किए बिना मैंने उसे अपने घर में बसा लिया है—आखिर वह मेरी भैया की ही तो बनकर रही। भैया को उसने अपना सर्व-समर्पण किया था, फिर वह हमसे अलग क्यों रहे? उसकी प्रीत और

की भौतिक भावुकता के पीछे उन अलौकिक भावावेगों को क्यों लाये जो यहाँ की लोक-नायिकाओं में पाये जाते हैं।

उसके आने से घर स्वर्ग बन गया है। राजा अब उसको बहुत चाहता है और जब वह घर के काम-काज में व्यस्त रहती है तब भी विरस-सा हो उठता है। उसे सावित्री याद हो आती है और वह अपनू पलट कर रोने बैठ जाती है। मेरे घर की व दोनों स्त्रियाँ माँ और सांदा अपने अपने प्यारों की याद में घुट घुट कर मर गयी हैं। अब एकान्त में वे धीर-गंभीर मुद्रा में होती हैं तब उनके चेहरों पर एक ऐसा ओज एक ऐसी शक्ति और एक ऐसा सौम्य होता है कि मन उन्हें प्रणाम करने को करता है।

राजा पढ़ने जाता है। सांदा का घर महा-गंभीर लगता है।

वह मोहन मेरे घर के पास आकर खड़ो हो गया है। मानो हर बात पकड़ती है और गाती है।

पानू ज्यूं पीलो पड़ी
लोग जाणे पंड रोग
छाने लांघण म्हें करया
पिया मिलण रे जोग
जोग चलो म्हारा राज…